सुनो कहानी, बिटिया रानी

प्रगति प्रकाशन

मास्को

द० मामिन-सिबिर्याक

सुनो कहानी, बिटिया रानी

अ० चेर्निशोव। मामिन-सिबिर्याक और उनकी कहानियां
५
आओ, कहानी सुनें
८
क़िस्सा बहादुर ख़रगोश का
११
एक था पतंगा
१७
लमनक्का मच्छर और छुटदुम्मा भालू
२५
वान्का का जन्मदिन
३३
गौरैया, कवई मछली और हंसमुख लड़का याशा
४५
आख़िरी मक्खी की कहानी
५५
काला कौआ और पीली कनारी
६७
सबसे ज़्यादा अक़्लमंद
७६
दूध, जई के दलिये और मूरका बिल्ली की कहानी
६१
सो जा, बिटिया रानी, सो जा
६६

अनुवादक : योगेन्द्र नागपाल

चित्रकार : गेओर्गी यूदिन

Д. МАМИН-СИБИРЯК
АЛЕНУШКИНЫ СКАЗКИ
на языке хинди

© हिन्दी अनुवाद • प्रगति प्रकाशन • १९७९

सोवियत संघ में मुद्रित

M $\frac{70802\text{-}542}{014(01)\text{-}79}$ 624—79

4803010101

मामिन-सिबिर्याक और उनकी कहानियां

बाहर अंधेरा हो चुका है। बर्फ़ पड़ रही है। खिड़कियों के शीशों पर पाले की पतली-पतली तह जम गयी है। अल्योनुश्का गठरी-सी बनी बिस्तर में लेटी हुई है। जब तक पिता जी उसे कहानी न सुनायें, वह सोना ही नहीं चाहती।

अल्योनुश्का के पिता द्मीत्री नरकीसोविच मामिन-सिबिर्याक लेखक हैं। वह कुर्सी पर बैठे हैं, उनके सामने मेज़ पर उनकी भावी पुस्तक की हस्तलिपि है। वह उठकर अल्योनुश्का के छोटे-से पलंग के पास आते हैं और आरामकुर्सी में बैठकर कहानी सुनाने लगते हैं। बच्ची बड़े ध्यान से सारी कहानियां सुनती है—बुद्धू टर्की मुर्गे की कहानी, जो यह समझता था कि वह सबसे ज्यादा अक़्लमंद है, और खिलौनों की कहानी, जो जन्मदिन मनाने के लिए इकट्ठे हुए और फिर वहां क्या हुआ। लाजवाब कहानियां हैं ये, एक दूसरी से बढ़कर दिलचस्प। लेकिन अल्योनुश्का की एक आंख सो गयी है। सो, अल्योनुश्का, सो, प्यारी बिटिया।

अल्योनुश्का सिर के नीचे हथेली रखकर सो जाती है। बाहर बर्फ़ गिरती जा रही है।

इस तरह बाप-बेटी जाड़ों की लंबी शामें काटते थे। अल्योनुश्का मां के बिना बड़ी हुई। उसकी मां बहुत पहले ही मर गयी थी। पिता बच्ची को पूरे मन से प्यार करते थे और उसे ख़ुश रखने के लिए सब कुछ करते थे।

वह सोती हुई बिटिया को देखते और उन्हें अपना बचपन याद हो आता। उनका बचपन उराल के एक कारख़ाने की छोटी-सी बस्ती में बीता था। मामिन-सिबिर्याक का जन्म बहुत पहले हुआ था—सन् १८५२ में। उन दिनों कारख़ाने में काम करनेवाले मजदूर मालिक के ग़ुलाम होते थे। वे सुबह तड़के से शाम को देर तक काम करते, लेकिन फिर भी ज़िंदगी उनकी ग़रीबी में बीतती। उधर उनके मालिक ऐशो-आराम से रहते थे। सुबह तड़के जब मजदूर काम पर जा रहे होते, तो तीन घोड़ोंवाली "त्रोइका" गाड़ियां उनके पास से सरपट गुज़रतीं। इनमें अमीर लोग नाच-गाने में सारी रात बिताकर घर लौट रहे होते थे।

मामिन-सिबिर्याक ग़रीब परिवार में पले। घर में एक-एक कोपेक का हिसाब रखना पड़ता था। लेकिन उनके माता-पिता बहुत भले और सहृदय थे और लोग उनकी ओर खिंचते थे। जब उनके घर कारख़ाने के मज़दूर आते, तो बालक को बहुत अच्छा लगता। कितनी दिलचस्प कहानियां सुनाते थे वे! मामिन-सिबिर्याक को बहादुर लुटेरे मरज़ाक का क़िस्सा ख़ास तौर पर याद रहा। लोगों का कहना था कि वह किसी ज़माने में उराल के जंगलों में छिपकर रहता

था। वह अमीरों का माल-मता लूट लेता और ग़रीबों में बांट देता। ज़ार की पुलिस कभी उसे पकड़ नहीं पायी। बालक एक-एक शब्द बड़े ध्यान से सुनता। वह भी मरज़ाक की ही तरह बहादुर और न्यायशील बनना चाहता था।

वह घना जंगल, जिसमें मरज़ाक के छिपने की बात कही जाती थी, उनके घर से थोड़ी ही दूर था। वहां पेड़ों की टहनियों पर गिलहरियां फुदकतीं, जंगल के किनारे ख़रगोश बैठा होता, और जंगल में कुछ दूर जाने पर भालू को भी देखा जा सकता था। भावी लेखक ने जंगल की सभी पगडंडियां अच्छी तरह से जान ली थीं। वह चुसोवया नदी के तट पर घूमते रहते, फ़र और भोज वृक्षों के जंगलों से ढकी पर्वतमाला को देर तक देखते रहते। इन पर्वतों का कोई आर-पार न था, इसीलिए लेखक "असीम वन्य विस्तार" के रूप में ही सदा प्रकृति की कल्पना करते थे।

माता-पिता ने बालक में पुस्तकों का शौक़ पैदा किया। वह घंटों तक पुश्किन और गोगोल, तुर्गेनेव और नेक्रासोव की रचनाएं पढ़ता रहता। छोटी उम्र में ही साहित्य में उसकी रुचि जाग उठी। सोलह साल की उम्र में उसने डायरी लिखनी शुरू कर दी।

कई साल बीत गये। मामिन-सिबिर्याक उराल के जीवन का चित्रण करनेवाले पहले लेखक बने। उन्होंने दसियों उपन्यास, लघु उपन्यास और सैकड़ों कहानियां लिखीं। उनमें उन्होंने बड़ी सहानुभूति के साथ साधारण जनता का जीवन, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध उसका संघर्ष दिखाया।

मामिन-सिबिर्याक ने बच्चों के लिए भी बहुत-सी कहानियां लिखीं। वह चाहते थे कि बच्चे प्रकृति के सौंदर्य, धरती की संपदा को देखना और समझना, मेहनतकश लोगों से प्रेम और उनका आदर करना सीखें। "बच्चों के लिए लिखना मेरे लिए परम सुख है," वह कहते थे।

जो कहानियां वह कभी अपनी बेटी को सुनाया करते थे, वे भी उन्होंने लिख लीं, उन्हें अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया और उसका नाम रखा 'सुनो कहानी, बिटिया रानी'।

इन कहानियों में धूप-नहाये दिन के उजले रंग हैं और रूस की समृद्ध प्रकृति का सौंदर्य भी। प्यारे बच्चो, अल्योनुश्का के साथ तुम भी जंगल, पहाड़, समुद्र और रेगिस्तान सब कुछ देखोगे।

मामिन-सिबिर्याक की कहानियों के नायक वही हैं, जो कई लोक-कथाओं में होते हैं: झबरा सुस्त भालू, भूखा भेड़िया, डरपोक ख़रगोश, चालाक़ गौरैया। वे लोगों की ही तरह

सोचते और आपस में बातें करते हैं। लेकिन साथ ही वे सचमुच के जानवर ही हैं। भालू को उन्होंने बेढब और भोंदू दिखाया है, भेड़िये को दुष्ट और गौरैया को शैतान, फुर्तीली और लड़ाकू।

उनकी कहानियों में चीज़ें भी ज़िंदा हो उठती हैं। खिलौने जन्मदिन मनाते हैं और झगड़ा भी करते हैं। पेड़-पौधे बातें करते हैं। 'सो जा, बिटिया रानी, सो जा' कहानी में बाग़ों-क्यारियों में पले नाज़ुक फूल अपनी ख़ूबसूरती पर घमंड करते हैं। वे महंगे कपड़े पहने अमीरों के बच्चों-से हैं। लेकिन खेतों-मैदानों में उगनेवाले सीधे-सादे फूल लेखक को ज़्यादा प्यारे हैं।

मामिन-सिबिर्याक की अपने कुछ नायकों के प्रति सहानुभूति थी और कुछ की वह हंसी उड़ाते थे। वह मेहनतकश लोगों के बारे में आदर से लिखते थे, आलसियों और कामचोरों की निंदा करते थे।

लेखक ऐसे लोगों को भी नहीं सह सकते थे, जो बहुत बनते हैं, जो सोचते हैं कि सब कुछ सिर्फ़ उनके लिए ही है। 'क़िस्सा आख़िरी मक्खी का' एक बुद्धू मक्खी की कहानी है, जो यह सोचती है कि घर में खिड़कियां इसलिए खोली जाती हैं, कि वह कमरों में आ-जा सके, कि मेज़ पर खाना इसलिए लगाया जाता है और अलमारी से मुरब्बा इसलिए निकाला जाता है कि वह जी भर कर खा सके, कि सूरज सिर्फ़ उसी के लिए चमकता है। कोई बुद्धू मक्खी ही ऐसे सोच सकती है।

किसी मछली और चिड़िया के जीवन में क्या समानता हो सकती है? कहानी में लेखक ने इसका जवाब दिया है। बेशक कवई मछली पानी में रहती है और गौरैया हवा में उड़ती है, लेकिन मछली और चिड़िया दोनों को ही पेट भरना होता है, दोनों ही स्वादिष्ट चीज़ पाना चाहती हैं, जाड़ों में दोनों को ठंड सहनी पड़ती है और गर्मियों में भी उन्हें कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

एकता में बड़ी शक्ति है। भालू कितना ताक़तवर है, लेकिन मच्छर भी अगर इकट्ठे हो जायें, तो भालू को जीत सकते हैं।

मामिन-सिबिर्याक को अपनी सभी पुस्तकों में 'सुनो कहानी, बिटिया रानी' से सबसे ज़्यादा प्यार था। वह कहा करते थे: "यह मेरी प्यारी किताब है। यह प्यार की आवाज़ है, इसलिए यह बाक़ी सबसे ज़्यादा देर तक जियेगी।"

अन्द्रेई चेर्निशोव

आओ, कहानी सुनें

सो जा, बिटिया रानी, सो जा... अल्योनुश्का की एक आंख सो रही है, दूसरी देख रही है। अल्योनुश्का का एक कान सो रहा है, दूसरा सुन रहा है। सो जा, अल्योनुश्का, सो जा, मेरी सुंदर बिटिया, पापा तुझे कहानियां सुनायेंगे। सभी आ गये लगते हैं: साइबेरियाई बिल्ला वास्का और गांव का झबरा कुत्ता भी, भूरी चुहिया और झींगुर भी, रंग-बिरंगी मैना और लड़ाका मुर्ग़ा भी। सो जा, अल्योनुश्का, अभी कहानी शुरू होती है। देख,

दूज का चांद खिड़की में से झांक रहा है, भेंगा ख़रगोश भी आ पहुंचा है। भेड़िये की आंखें पीली-पीली बत्तियों-सी चमक रही हैं। भालू अपना पंजा चूस रहा है। बूढ़ी गौरैया खिड़की पर आ बैठी है, वह चोंच से शीशे पर ठक-ठक करती पूछ रही है: "और कितनी देर है? सब आ गये, सब इकट्ठे हो गये हैं और अल्योनुश्का की कहानी का इंतज़ार कर रहे हैं।" अल्योनुश्का की एक आंख सो रही है, दूसरी देख रही है। अल्योनुश्का का एक कान सो रहा है, दूसरा सुन रहा है।

सो जा, बिटिया रानी, सो जा...

क़िस्सा बहादुर ख़रगोश का

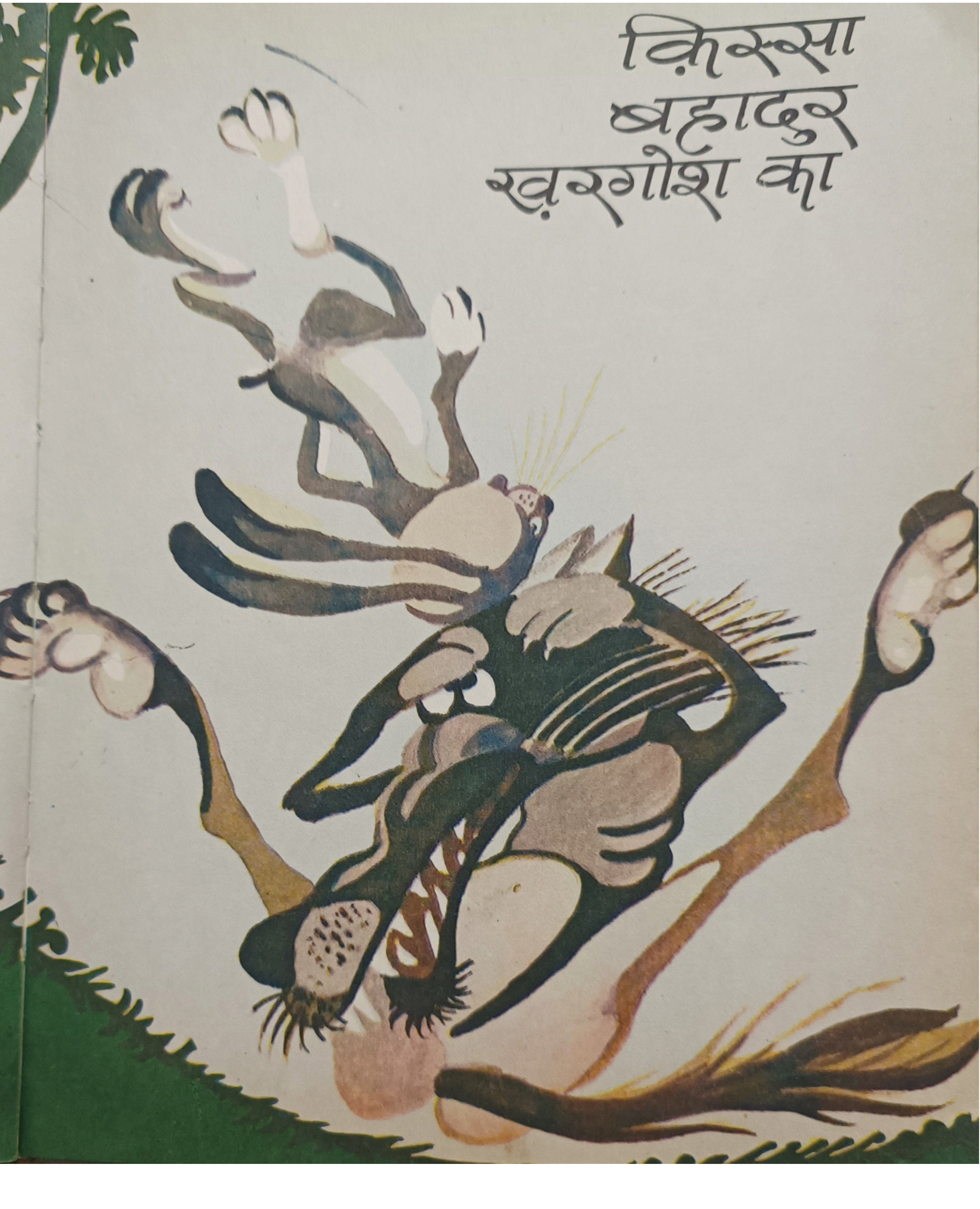

मैं किसी से नहीं
डरता !

किसी जंगल में ख़रगोश का जन्म हुआ। कान उसके लंबे-लंबे थे, दुम छोटी-सी और आंखें भेंगी। वह हमेशा डरता रहता था। कहीं कोई टहनी चटकती, कोई चिड़िया पंख फड़फड़ाती या पेड़ से बर्फ़ का गोला गिर पड़ता और बस, ख़रगोश की जान सूख जाती।

ख़रगोश एक दिन डरा, दो दिन डरा, हफ़्ते भर डरा, साल भर डरा, ऐसे ही बड़ा हो गया और डरते-डरते तंग आ गया।

"मैं किसी से नहीं डरता! ज़रा भी नहीं!" उसने चिल्लाकर कहा।

बूढ़े ख़रगोश इकट्ठे हो गये, नन्हे-नन्हे ख़रगोश-बच्चे भी भाग आये, बूढ़ी ख़रगोशिनें भी आ पहुंचीं। लंबे-लंबे कानों, छोटी-सी दुम और भेंगी आंखोंवाले ख़रगोश को सभी शेख़ी बघारते सुन रहे थे। किसी को भी अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं कि ख़रगोश किसी से न डरे।

"क्यों रे भेंगे, तू भेड़िये से भी नहीं डरता?"

"भेड़िया ही क्या, मैं तो लोमड़ी और भालू–किसी से भी नहीं डरता!"

यह तो बड़े मज़े की बात थी। नन्हे-नन्हे ख़रगोश-बच्चे अपने पंजों से मुंह छिपाकर खी-खी करने लगे, बूढ़ी नेक ख़रगोशिनें हंसने लगीं, बूढ़े ख़रगोश, जो लोमड़ी के नाख़ूनों और भेड़िये के दांतों का मज़ा चख चुके थे, मुस्कराने लगे। बड़ा ही अजीब था यह ख़रगोश! और एकाएक सभीं ख़रगोश तरंग में आ गये। वे कलाबाज़ियां खाने, उछलने-कूदने और एक दूसरे के पीछे भागने लगे, मानो सब का सिर फिर गया हो।

"अरे, बेकार बातें करने में क्या तुक है," बिल्कुल निडर हो कर ख़रगोश चिल्लाया। "अगर भेड़िया मेरे सामने आ जाये, तो मैं ख़ुद ही उसे खा जाऊं..."

"ओह, कैसा पागल ख़रगोश है! कैसा भोंदू!"

सब देख रहे थे कि ख़रगोश बड़ा सनकी और बुद्धू है और सब हंस रहे थे।

ख़रगोश भेड़िये के बारे में शोर मचा रहे थे और लो, भेड़िया भी आ गया।

भेड़िया जंगल में अपने काम से घूम रहा था। भूख लगी तो उसने सोचा: "ख़रगोश का नाश्ता हो जाये, तो कितना अच्छा रहे!" उसने ऐसा सोचा ही था कि कहीं पास ही में उसे ख़रगोशों की आवाज़ें सुनाई दीं। वे ज़ोर-ज़ोर से उसी भूरे भेड़िये का

नाम ले रहे थे। भेड़िये ने रुककर हवा सूंघी और दबे पांव ख़रगोशों की ओर बढ़ने लगा।

भेड़िया हुड़दंग मचाते ख़रगोशों के बिल्कुल नज़दीक पहुंच गया। वे सब भेड़िये का मज़ाक़ उड़ा रहे थे। लंबे-लंबे कानों, छोटी-सी दुम और भेंगी आंखोंवाला शेख़ीबाज़ ख़रगोश उनमें सबसे तेज़ था।

"ज़रा ठहर, बच्चू! अभी मैं तुझे हड़पता हूं!" भूरे भेड़िये ने सोचा और यह देखने लगा कि कौन-सा ख़रगोश अपनी बहादुरी की डींग मार रहा है। लेकिन ख़रगोश कुछ देख ही नहीं रहे थे और पहले से भी ज़्यादा हो-हल्ला मचा रहे थे। आख़िर हुआ यह कि शेख़ीबाज़ ख़रगोश एक छोटे-से ठूंठ पर चढ़ गया और पिछले पंजों पर बैठकर बोला:

"सुनो, ए कायरो! सुनो, इधर देखो मेरी तरफ़! अभी मैं तुम्हें एक तमाशा दिखाता हूं। मैं... मैं... मैं..."

इसी वक़्त शेख़ीबाज़ की ज़बान को मानो लक़वा मार गया।

लमकन्ने ख़रगोश ने अपने पर नज़रें गड़ाये भेड़िये को देख लिया था। बाक़ी ख़रगोश भेड़िये को नहीं देख रहे थे, लेकिन वह देख रहा था और उसके लिए सांस लेना मुश्किल हो रहा था।

और तभी एक अचम्भे की बात हुई।

शेख़ीबाज़ ख़रगोश गेंद की तरह ऊपर उछला और डर के मारे सीधे भेड़िये के चौड़े माथे पर गिरा और कलाबाज़ी खाता हुआ भेड़िये की पीठ पर लुढ़क गया। उसने एक बार फिर हवा में कलाबाज़ी खायी और इसके बाद सिर पर पैर रखकर ऐसे भागा, ऐसे भागा, मानो अपने शरीर का चोला वहीं छोड़ जायेगा।

अभागा ख़रगोश भागता गया, भागता गया, जब तक कि थक कर चूर नहीं हो गया।

उसे लग रहा था कि भेड़िया उसके पीछे-पीछे ही भागा चला आ रहा है और बस, अभी उसे अपने जबड़ों तले दबोच लेगा।

आख़िर वह बिल्कुल बेदम हो गया, उसने आंखें बंद कर लीं और निढाल होकर झाड़ी के नीचे जा पड़ा।

इस बीच भेड़िया दूसरी ही ओर भागा जा रहा था। जब ख़रगोश उस पर

गिरा, तो उसे लगा कि किसी ने उस पर गोली दाग़ी है और वह भाग खड़ा हुआ। जंगल में और बहुतेरे ख़रगोश मिल सकते हैं, यह तो कोई बावला मालूम होता है।

काफ़ी देर तक बाक़ी ख़रगोशों की भी सिट्टी-पिट्टी गुम रही। कोई झाड़ी में छुप गया था, कोई ठूंठ के पीछे और कोई गड्ढे में जा कूदा था।

आख़िर सब छिपे-छिपे उकता गये और जो ज्यादा दिलेर थे, वे धीरे-धीरे बाहर निकलने लगे।

"भई वाह, हमारे ख़रगोश ने तो भेड़िये को ख़ूब डरा भगाया," सबका ऐसा ही ख़्याल था। "अगर वह न होता, तो हमारी जान के ही लाले पड़ जाते। पर है कहां हमारा निडर ख़रगोश?"

सब उसे ढूंढ़ने लगे।

इधर देखा, उधर देखा, पर बहादुर ख़रगोश कहीं मिला ही नहीं। कहीं कोई दूसरा भेड़िया तो नहीं खा गया उसे? आख़िर ख़रगोश मिल गया: वह एक झाड़ी के नीचे गड्ढे में लेटा हुआ था और डर से उसकी जान निकली जा रही थी।

"शाबाश, भेंगे!" सारे ख़रगोश एक साथ चिल्ला उठे। "कमाल कर दिया, भेंगे! ख़ूब डराया तूने बूढ़े भेड़िये को। शुक्रिया तेरा! हम तो समझ रहे थे कि तू योंही डींग हांक रहा है!"

बहादुर ख़रगोश की तुरंत जान में जान आ गयी। गड्ढे में से निकलकर उसने अपना शरीर झकझोरा, आंखें सिकोड़ीं और बोला:

"और तुम लोगों ने क्या समझा था? वाह रे, डरपोको।"

उस दिन से बहादुर ख़रगोश ख़ुद भी इस बात पर विश्वास करने लगा कि वह सचमुच किसी से नहीं डरता।

सो जा, बिटिया रानी, सो जा...

एक था पतंगा

सब, सब कुछ मेरा है!

(१)

उस पतंगे को जन्म लेते किसी ने नहीं देखा।

वसंत का दिन था, धूप खिली थी। पतंगे ने चारों ओर देखा और कहा:

"वाह!"

पतंगे ने अपने पंख फैलाये, पतले-पतले पैरों को एक दूसरे से रगड़ा, एक बार फिर चारों ओर देखा और कहा:

"वाह! कितना अच्छा है! गुलाबी-गुलाबी धूप, नीला आसमान और हरी-हरी घास—कितना अच्छा है सब कुछ! और सब मेरा है!"

पतंगे ने फिर से पैर रगड़े और उड़ चला। वह उड़ता जा रहा था और चारों ओर देख-देखकर ख़ुश हो रहा था।

नीचे हरी-हरी घास उग रही थी और घास में छोटा-सा लाल-लाल फूल छिपा हुआ था।

"पतंगे, आ जा मेरे पास!" फूल ने कहा।

पतंगा ज़मीन पर उतर आया, रेंग-रेंगकर फूल पर चढ़ गया और उसका मीठा-मीठा रस पीने लगा।

"कितना अच्छा है तू, फूल," पतंगे ने पैरों से अपनी थूथनी पोंछते हुए कहा।

"अच्छा तो हूं, पर मुझे चलना नहीं आता," फूल ने शिकायत की।

"फिर भी सब कुछ अच्छा है," पतंगे ने उसे यक़ीन दिलाया। "और सब मेरा है।"

वह अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि एक रोंएदार भौंरा गुंजार करता हुआ आ धमका:

"भिन-भिन! कौन मेरे फूल पर चढ़ गया है? भिन-भिन! कौन मेरा मीठा-मीठा रस पी रहा है? भिन-भिन... ओह, यह तू है, दो टके का पतंगा! भाग यहां से! भिन-भिन.... भाग जा, वरना मैं काट लूंगा!"

"अजी, सुनिये तो, यह क्या बात हुई?" पतंगा बोला। "सब, सब कुछ मेरा है!"

"भिन-भिन-भिन... नहीं, मेरा है।"

पतंगे ने मुश्किल से भौंरे से जान बचाई। वह घास पर जा बैठा और अपने पैर चाटने लगा, जिन पर फूल का पराग लगा हुआ था।

उसे ग़ुस्सा आ रहा था :

"कैसा बदतमीज़ है यह भौंरा! यहां तक कि हैरानी होती है। देखो तो, काटने चला था। सब कुछ तो मेरा है—धूप भी, घास भी और फूल भी।"

"नहीं, जनाब, माफ़ कीजिये, सब कुछ मेरा है," रोंएदार सूंड़ी बोल उठी। वह पास ही में घास के तिनके पर रेंगती हुई चढ़ रही थी।

पतंगे को ख़्याल आया कि सूंड़ी तो उड़ नहीं सकती और वह ज़रा हिम्मत से बोला :

"माफ़ करना, सूंड़ी जी, आप ग़लत कहती हैं। मैं आपको रेंगने से नहीं रोकता, पर मुझसे बहस मत कीजिये!"

"ठीक है, ठीक है। बस तुम मेरी घास मत छुओ। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। जाने कौन-कौन यहां उड़ता रहता है। तुम सब चंचलमन हो और मैं गंभीर हूं। सच पूछो तो सब कुछ मेरा है। मेरा मन आये, तो तिनके पर चढ़कर उसे खा लूं, मन आये, तो फूल पर चढ़ जाऊं और उसे भी खा जाऊं।"

(२)

कुछ ही घंटों में पतंगा सब कुछ जान गया : कि गुलाबी धूप, नीले आसमान और हरी घास के अलावा ग़ुस्सैल भौंरे, गंभीर सूंड़ियां और फूलों पर तरह-तरह के कांटे भी हैं। बेचारे को बड़ी निराशा हुई। उसे तो ग़ुस्सा भी आने लगा। उसे पूरा विश्वास था कि सब कुछ उसका है, उसी के लिए बनाया गया है, लेकिन यहां तो बाक़ी सब भी ऐसा ही सोचते हैं। नहीं, ज़रूर कुछ घुटाला है। ऐसा हो ही नहीं सकता।

पतंगा आगे उड़ चला। वहां उसे पानी दिखाई दिया।

"यह तो ज़रूर मेरा ही है!" वह ख़ुशी से चिल्लाया। "मेरा पानी! वाह, कितना मज़ा है! यहां फूल भी हैं और घास भी!"

सामने से दूसरे पतंगे उड़ते आ रहे थे।

"नमस्ते, भैया!"

"नमस्ते, प्यारे भाइयो। मैं तो अकेला उड़ता-उड़ता ऊब ही गया था। तुम सब यहां क्या कर रहे हो?"

"हम खेल रहे हैं, भैया। आ जा हमारे पास। यहां ख़ूब मज़े हैं। तू कब जन्मा?"

"आज ही। मुझे भौंरा काटने लगा था, फिर मैंने सूंड़ी भी देखी। मैं सोचता था कि सब कुछ मेरा है, पर वे कहते हैं कि उनका है।"

दूसरे पतंगों ने उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दिया और अपने साथ खेलने के लिए बुलाया।

पानी के ऊपर झुंड के झुंड पतंगे खेल रहे थे। वे चक्कर लगाते उड़ रहे थे और भिनभिना रहे थे।

हमारा पतंगा ख़ुशी से फूला न समा रहा था। थोड़ी ही देर में वह ग़ुस्सैल भौंरे और गंभीर सूंड़ी को बिल्कुल भूल ही गया।

"वाह, कितना मज़ा है!" वह ख़ुशी से गुनगुना रहा था। "सब कुछ मेरा है: धूप भी, घास भी और पानी भी। क्यों दूसरे कीड़े आपे से बाहर होते हैं, मेरी तो बिल्कुल समझ में नहीं आता। सब कुछ मेरा है और मैं किसी को कुछ नहीं कहता: उड़ो, भिनभिनाओ, मौज करो। मुझे कोई एतराज़ नहीं।"

पतंगे ने ख़ूब मौज की, जी भरकर खेला-कूदा और फिर दलदल में उग रहे नरकट पर आराम करने बैठ गया। आख़िर आराम भी तो करना चाहिए। नरकट पर बैठकर वह दूसरे पतंगों को हंसते-खेलते देख रहा था।

अचानक न जाने कहां से गौरैया उसके पास से ऐसे निकली मानो किसी ने पत्थर फेंका हो।

"ऊई मां, ऊई मां!" पतंगे चिल्लाने लगे और तितर-बितर हो गये।

जब गौरैया चली गयी, तो दर्जन भर पतंगे कम रह गये।

"ओह, चोट्टी!" बूढ़े पतंगे गौरैया को बुरा-भला कह रहे थे। "पूरे दर्जन भर पतंगे हड़प गयी।"

यह तो भौंरे से भी ज़्यादा ख़तरनाक था। पतंगे को डर महसूस होने लगा और वह

दूसरे नौजवान पतंगों के साथ दलदली घास में और भी दूर छिपने लगा। पर यहां दूसरी मुसीबत थी: दो पतंगों को मछली खा गयी और दो को मेंढक।

"यह क्या बात हुई भला?" पतंगा हैरान था। "यह तो बहुत ही अटपटा मामला है। ऐसे तो जिया भी नहीं जा सकता। छी, कैसे गंदे हैं ये सब!"

यह तो ग़नीमत थी कि पतंगे बहुत थे और किसी को उनके कम हो जाने का पता नहीं चलता था। और फिर नये-नये पतंगे भी आते जाते थे, जो थोड़ी देर पहले ही जन्मे थे। वे उड़ते और भिनभिनाते:

"सब कुछ हमारा है, हमारा है।"

"नहीं, सब हमारा नहीं," हमारा पतंगा चिल्लाया। "हमारे अलावा गुस्सैल भौंरे, सूंड़ियां, गंदी गौरैयां, मछलियां और मेंढक भी हैं। होशियार रहना, भाइयो!"

तब तक रात हो गयी थी। इसलिए सब पतंगे सरकंडों में छिप गये, जहां प्यारी गर्मी थी। आसमान में तारे छिटक गये, चांद निकल आया और सब कुछ पानी में झिलमिला रहा था।

वाह, कितना अच्छा है यह सब!

"मेरा चांद, मेरे तारे," हमारा पतंगा सोच रहा था, पर उसने किसी से कुछ नहीं कहा: नहीं तो यह भी छिन जायेंगे।

(३)

पतंगे ने ऐसे ही सारी गर्मियां बिता दीं।

उसने ख़ूब मौज मनायी और उस पर कई मुसीबतें भी आईं। दो बार वह फुर्तीली अबाबील का निवाला बनते-बनते बचा; फिर एक बार मेंढक चुपके-चुपके पास आ गया। कई दुश्मन थे पतंगे के। ख़ुशी की घड़ियां भी आईं: एक बार उसे अपने जैसा ही पतंगा मिला, पर उसके रोएंदार मूंछें थीं। वह बोला:

"कितना अच्छा है तू। चल, हम साथ-साथ रहेंगे।"

और वे इकट्ठे रहने लगे, बहुत ही मेल-मिलाप से। सब कुछ मिल-जुलकर करते थे,

हमेशा एक-दूसरे का साथ निभाते। और उन्हें पता भी न चला कैसे गर्मियां बीत गयीं। बारिशें शुरू हो गयीं, रातें ठंडी होने लगीं। एक दिन हमारा पतंगा बोला:

"उफ़, कितना थक गया हूं मैं!"

वह कब मर गया किसी ने भी नहीं देखा।

वैसे तो वह मरा नहीं था, बस, जाड़े भर के लिए सो गया था, ताकि वसंत में जागकर फिर से मौज करे।

भिनक्का मच्छर और छुट्दुम्मा भालू

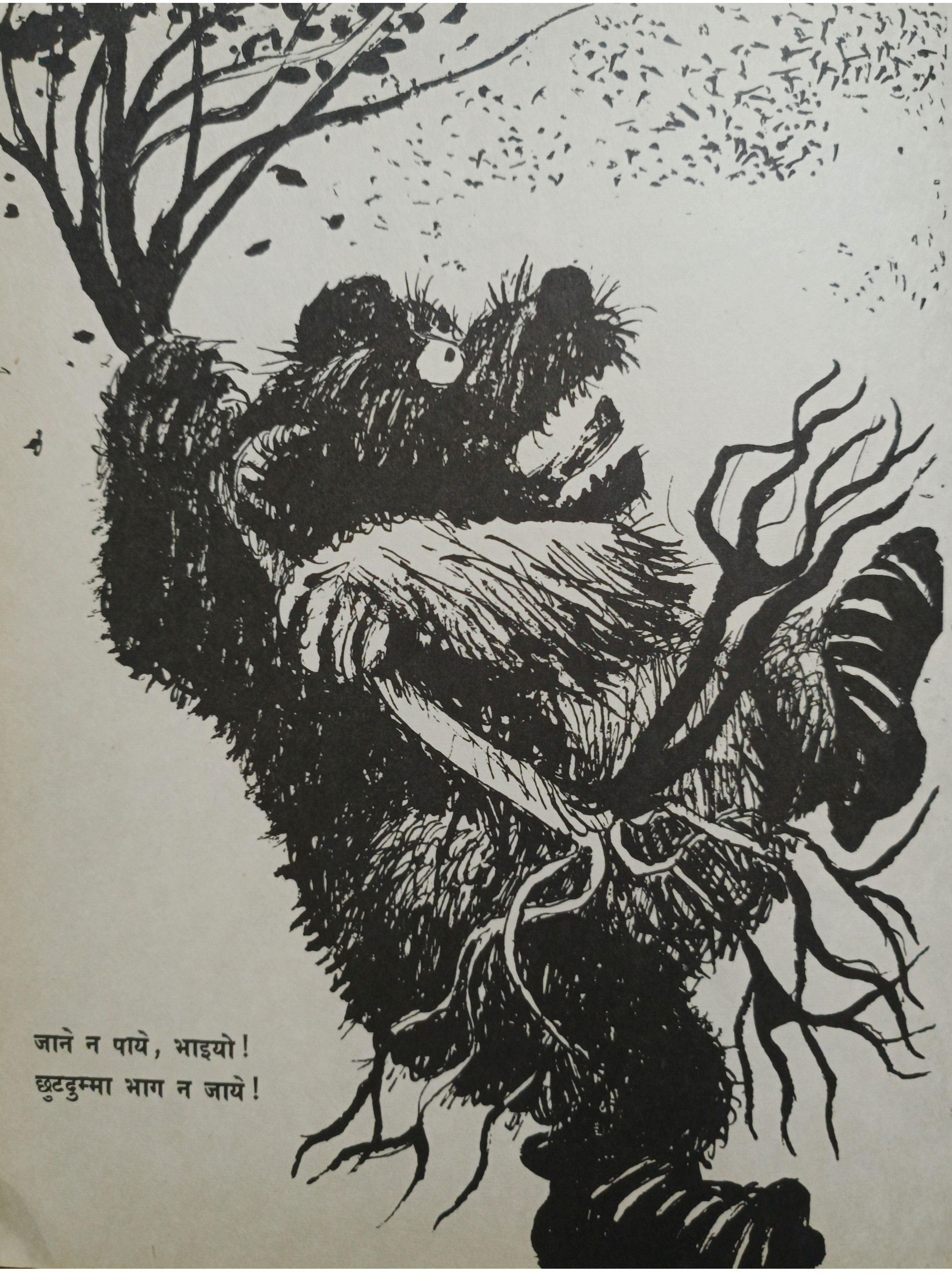

जाने न पाये, भाइयो!
छुटदुम्मा भाग न जाये!

(१)

भरी दुपहरी में ही यह सब हुआ। सब मच्छर गर्मी से बचने के लिए दलदल में छिप गये थे। लमनक्का मच्छर एक चौड़ी पत्ती के नीचे दुबककर सो गया। सोते में उसे कानफाड़ चीख़ सुनाई दी :

"अरे बाप रे! मारे गये, मारे गये!"

लमनक्का फ़ौरन पत्ती के नीचे से निकला और चिल्लाया :

"क्या हो गया? क्यों गला फाड़ रहे हो?"

पर मच्छर थे कि उड़े जा रहे थे और अपनी भिन-भिन से आसमान सिर पर उठाये हुए थे।

"अरे बाप रे! भालू आ गया हमारे दलदल में। धड़ाम से घास पर लेट गया और लेटते ही उसने पांच सौ मच्छरों को कुचल डाला। सांस ली, तो सौ मच्छर निगल गया। मारे गये, भाइयो! बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भागे हैं, नहीं तो सबको कुचल देता!"

लमनक्के को फ़ौरन ग़ुस्सा आया – भालू पर भी और इन मच्छरों पर भी, जो बेमतलब चिल्लाये जा रहे थे।

"ऐ, बंद करो यह चिल्ल-पों!" वह चिल्लाया। "मैं अभी जाकर भालू को भगा देता हूं। तुम सब तो यहां बेकार चिल्ला रहे हो।"

लमनक्के का पारा और भी चढ़ गया और वह उड़ चला। दलदल में भालू सचमुच ही लेटा हुआ था। सबसे घनी घास पर, जहां सदियों से मच्छर रहते आये हैं, वह लंबी ताने था और उसकी नाक बज रही थी। बेशर्म कहीं का! परायी जगह में घुस आया, इतने मच्छरों की जानें ले लीं और ऊपर से ऐसी मीठी नींद ले रहा है!

"ऐ, छुटदुम्मे, क्या करने आया है यहां?" लमनक्का मच्छर सारे जंगल को गुंजाते हुए ऐसे चिल्लाया कि ख़ुद ही डर गया।

झबरे भालू ने एक आंख खोली – कोई नहीं दिखा, दूसरी खोली – बड़ी मुश्किल से नाक के ऐन ऊपर उड़ता मच्छर नज़र आया।

"क्या बात है, भई?" भालू बड़बड़ाया। उसे भी ग़ुस्सा आने लगा। आता भी क्यों नहीं, आराम करने के लिए लेटा ही था कि कोई कमबख़्त कान खाने लगा।

"ऐ, छुटदुम्मे, चला जा यहां से चपचाप!"

भालू ने दोनों आंखें खोलीं, बड़बोले मच्छर को देखा और नाक से फुंकार छोड़ी। उसे बहुत ज़्यादा ग़ुस्सा आ रहा था।

"तू चाहता क्या है, निकम्मा कहीं का?" वह गुर्राया।

"चला जा हमारी जगह से। हां, मैं ज़्यादा बात-वात नहीं करता, तेरे इन झबरीले बालों समेत ही खा जाऊंगा तुझे।"

भालू को बड़ी हंसी आयी। उसने करवट बदली, अपने थूथन पर पंजा रखा और उसी पल खर्राटे भरने लगा।

(२)

लमनक्का दूसरे मच्छरों के पास उड़ चला।

"ख़ूब डरा दिया है मैंने भालू को! फिर कभी इधर नहीं आयेगा," वह इतने ज़ोरों से चिल्लाया कि सारे दलदल में उसकी आवाज़ सुनाई दी।

मच्छर हैरान होकर पूछने लगे:

"पर भालू अब है कहां?"

"यह तो पता नहीं, भई। मैं ज़्यादा बातें तो बनाता नहीं, बस सीधे-सीधे कह दिया: चला जा, नहीं तो खा जाऊंगा। हां, हां, ऐसे ही कह दिया: खा जाऊंगा। बुरी तरह से डर गया वह तो। मुझे तो शंका है कि कहीं मेरे यहां तक आते-आते डर के मारे उसकी जान ही न निकल गयी हो। निकलने दो, क़सूर उसी का है!"

सब मच्छर भिनभिनाने और शोर मचाने लगे। बड़ी देर तक उनमें यह बहस होती रही कि बदतमीज़ भालू का क्या करें। दलदल में कभी ऐसा भयानक शोर नहीं मचा था। बड़ी देर तक मच्छर भिनभिनाते रहे, भिनभिनाते रहे, आख़िर उन्होंने फ़ैसला किया कि भालू को दलदल से भगा देना चाहिये।

"जाये जंगल में अपने घर और सोये वहां। यह दलदल तो हमारा है, हमारे बाप-दादा भी इसी दलदल में रहे हैं।"

एक समझदार बूढ़े मच्छर ने उनको यह सलाह देनी चाही कि वे भालू को आराम से

पड़ा रहने दें। जब उसकी नींद पूरी हो जायेगी, तो ख़ुद ही चला जायेगा। लेकिन वे सब उस पर इस तरह बरस पड़े कि उस बेचारे ने मुश्किल से अपना पिंड छुड़ाया।

"चलो, भाइयो!" लमनक्का मच्छर सबसे ज़्यादा चिल्ला रहा था। "हम उसे मज़ा चखा देंगे, हां!"

सब मच्छर लमनक्के के पीछे उड़ चले। वे उड़ते और इतने ज़ोरों से भिनभिनाते जा रहे थे कि उन्हें ख़ुद भी डर लगता था। भालू पहलेवाली जगह पर ही लेटा हुआ था, न हिलता था, न डुलता था।

"देखा, क्या कहा था मैंने: मर गया बेचारा डर के मारे!" लमनक्का डींग मारने लगा। "मुझे तो थोड़ा तरस भी आ रहा है बेचारे पर, इतना मोटा-तगड़ा भालू था।"

"अरे, यह तो सो रहा है," एक छोटा-सा मच्छर अपनी पतली-सी आवाज़ में चिल्लाया। वह भालू की नाक के पास चला गया था और भालू की सांस के साथ अंदर जाते-जाते बचा था।

"ओह, बेशर्म! ओह, बेहया!" सब मच्छर एक साथ भिनभिना उठे। सारा दलदल उनकी भिनभिनाहट से गूंज उठा। "पांच सौ मच्छरों को कुचल डाला, सौ मच्छरों को निगल गया और फिर यहां ऐसे सोया पड़ा है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।"

और झबरा भालू था कि मज़े से सोया हुआ खर्राटे भरे जा रहा था।

"यह तो सोने का बहाना कर रहा है!" लमनक्का चिल्लाया और भालू की ओर उड़ गया। "मैं अभी इसे नानी याद दिलाता हूं। ऐ, छुटदुम्मे, बहुत ढोंग कर लिया तूने!"

और फिर उसने सीधे भालू की काली नाक में अपनी लंबी नाक से जो डंक मारा, तो भालू ने फट से उठकर पंजा अपनी नाक पर मारा। लेकिन लमनक्का तो नौ दो ग्यारह हो चुका था।

"क्यों रे भालू, कुछ मज़ा मिला?" मच्छर भिनभिनाया। "चला जा यहां से, नहीं तो और भी बुरी हालत होगी। मैं अब अकेला नहीं हूं, मेरे साथ दलदल के सारे मच्छर हैं। भाग जा यहां से, छुटदुम्मे!"

"नहीं जाता मैं!" भालू ने पिछले पंजों पर बैठते हुए गुर्राकर कहा। "अभी मैं तुम सब को कुचले देता हूं।"

"अरे, छुटदुम्मे, क्यों बेकार डींग मारता है।"

लमनक्का मच्छर फिर उड़ा और उसने सीधे भालू की आंख में डंक गड़ा दिया। भालू

दर्द से चीख़ उठा। उसने अपने थूथन पर पंजा मारा। लेकिन उसका वार फिर ख़ाली गया, उसकी अपनी आंख ही निकलते-निकलते बची। और लमनक्का उसके कान के ऊपर उड़ता हुआ भिनभिनाता जा रहा था:

"मैं तुझे खा जाऊंगा, छुटदुम्मे!"

(३)

ग़ुस्से से भालू का ख़ून खौलने लगा। उसने जड़ समेत भोज वृक्ष उखाड़ लिया और लगा उससे मच्छरों पर प्रहार करने। अपना सारा दम लगाकर वह वार करता था। वार करते करते थक गया, पर मच्छर एक भी नहीं मरा। सब उसके सिर के ऊपर उड़ते हुए भिनभिना रहे थे। तब भालू ने एक भारी-सा पत्थर उठाया और मच्छरों पर दे मारा, लेकिन फिर भी कोई बात नहीं बनी।

"क्यों रे भालू, मार ली बाज़ी?" लमनक्का मच्छर भिनभिना रहा था। "मैं तो तुझे चबा ही जाऊंगा।"

न जाने कितनी देर तक भालू मच्छरों से जूझता रहा। ख़ूब शोर मचा। दूर-दूर तक उसकी गरज सुनाई देती रही। कितने ही पेड़ उसने उखाड़ डाले थे, कितने ही पत्थर उठा-उठाकर फेंके थे। वह तो बस लमनक्के को मारना चाहता था, जो यहीं, पास ही, उसके कान के ऊपर ही मंडरा रहा था। लेकिन भालू जब पंजा चलाता, तो हाथ में कुछ न आता, अपना थूथन ही उसने लहू-लुहान कर लिया था।

आख़िर भालू बुरी तरह थक गया। पिछले पैरों पर बैठकर वह फुफकारा और तभी उसे एक नयी तरकीब सूझी – वह घास पर लुढ़कने लगा, ताकि सभी मच्छरों को कुचल दे। वह लुढ़कता रहा, लुढ़कता रहा, पर इससे भी कोई बात नहीं बनी, बस ख़ुद ही पहले से भी ज़्यादा थक गया। तब उसने काई में थूथन छिपा लिया, लेकिन इसका तो और भी बुरा नतीजा निकला – मच्छर उसकी छोटी-सी दुम पर चिपककर डंक मारने लगे। भालू ग़ुस्से से आग-बबूला हो गया।

"ठहरो शैतानो, अभी मैं तुम्हें मज़ा चखाता हूं!" वह ऐसे गरज रहा था कि उसकी

आवाज़ पांच मील तक सुनाई दे रही थी। "अभी मैं तुम्हारी अक़्ल ठिकाने करता हूं। अभी... अभी..."

मच्छर थोड़ा पीछे हटकर इंतजार करने लगे कि भालू क्या करता है। भालू नट की तरह पेड़ पर चढ़ गया और उसकी सबसे मोटी टहनी पर बैठकर गरजने लगा:

"अब आओ मेरे पास। एक-एक की नाक तोड़ दूंगा!"

मच्छर अपनी पतली-पतली आवाज़ में हंसने लगे। उनकी पूरी फ़ौज ही भालू पर टूट पड़ी। वे भिनभिनाते हुए भालू के चारों ओर मंडराने लगे। भालू ने उनको भगाने की कोशिश की और अनजाने में ही सौ एक मच्छर निगल गया। उसे उच्छू आ गयी और वह धड़ाम से ज़मीन पर जा गिरा। लेकिन फ़ौरन ही उठ खड़ा हुआ और अपनी चोट लगी बग़ल को सहलाता हुआ बोला:

"देखा, कैसे कूदता हूं मैं!"

मच्छर और भी ज़ोरों से हंसने लगे। और लमनक्का भिनभिनाता जा रहा था:

"मैं तो तुझे खा ही जाऊंगा, खा जाऊंगा, हां, खा ही जाऊंगा!"

भालू बेचारा अब तक थककर बेहाल हो गया था, पर भाग जाने से भी उसकी हेठी होती थी। बस, वह वहीं अपने पिछले पैरों पर बैठा हुआ आंखें मिचकाता रहा।

आख़िर एक मेंढक ने आकर उसे इस मुसीबत से उबारा। वह एक ढूह के नीचे से फुदककर बाहर आया और बोला:

"क्यों तुम बेकार परेशान होते हो, भालू भाई! इन निकम्मे मच्छरों की ओर भला क्या ध्यान देना।"

"ठीक कहा तुमने," भालू ख़ुश होकर बोला। "मैं तो यों ही... ज़रा आयें तो ये मेरी मांद में... मैं... मैं..."

और झबरा भालू अपनी छोटी-सी दुम दबाकर वहां से भाग चला। लमनक्का मच्छर उसके पीछे-पीछे उड़ता और चिल्लाता जा रहा था:

"जाने न पाये, भाइयो, जाने न पाये! भाग न पाये, छुटदुम्मा भाग न जाये!"

सब मच्छर इकट्ठे होकर सोचने लगे। बहुत सोच-विचार कर उन्होंने फ़ैसला किया: "भाग जाने दो भालू को। आख़िर दलदल तो हमारा ही रहा!"

वान्का का जन्मदिन

खूब मौज करो,
दोस्तो !

(१)

ढोल बजे ढम-ढम-ढम! तुरही बजे तू-तू-तू! सब बाजे बजें—आज वान्का का जन्मदिन है! आओ, प्यारे दोस्तो, आओ! सब मेरे यहां पधारो! ढम-ढम-ढम! तू-तू-तू!

लाल क़मीज़ पहने वान्का इधर-उधर टहल रहा है और कह रहा है:

"आओ दोस्तो, आओ, जो चाहो, जितना चाहो खाओ! ताज़ा-ताज़ा छिपटियों का सूप, सबसे अच्छी, सबसे साफ़ रेत की टिकियां, रंग-बिरंगे काग़ज़ों के केक और चाय। क्या ग़ज़ब की चाय है! बिल्कुल साफ़ उबला पानी! आइये पधारिये! बजाओ भई, बजाओ, ढोल-बाजा बजाओ!"

ढम-ढम! ढम-ढम-ढम! तू-तू! तू-तू-तू!

मेहमानों से कमरा भर गया। सबसे पहले मोटा-ताज़ा लट्टू आया।

"फ़ुर्र... फ़ुर्र... कहां हैं वान्का? फ़ुर्र... फ़ुर्र... यार-दोस्तों में मौज करना मुझे बहुत अच्छा लगता है!"

दो गुड़ियां आईं। एक थी नीली आंखोंवाली आन्या, उसकी नाक थोड़ी-सी टूटी हुई थी। दूसरी थी काली आंखोंवाली कात्या, उसका एक हाथ ग़ायब था। वे आकर बड़ी शान से खिलौना सोफ़े पर बैठ गयीं।

"देखते हैं, वान्का क्या खिलायेगा," आन्या ने कहा। "डींगें तो बहुत मार रहा है। बैंड-बाजा बुरा नहीं, पर खाने-वाने के बारे में तो मुझे शक ही है।"

"तू तो, आन्या, हमेशा कोई न कोई नुक़्स निकालती रहती है," कात्या ने उसे फटकारा।

"और तू हमेशा झगड़ने को तैयार रहती है।"

गुड़ियों में बहस छिड़ गयी। वे तो लड़ ही पड़तीं, लेकिन तभी एक ख़स्ताहाल मसख़रा अपनी एक टांग पर लंगड़ाता हुआ आ पहुंचा और उसने फ़ौरन उनकी सुलह करवा दी।

"सब ठीक होगा, बहनो! ख़ूब रंग जमेगा! बेशक मेरी एक ही टांग रह गई है, पर
घूमता है। सलाम, लट्टू!"
यह लट्टू भी तो एक ही टांग पर कितने ज़ोर से घूमता है। सलाम, लट्टू!" ने हाथ जमा
"फ़ुर्र... सलाम! यह तेरी आंख को क्या हुआ, लगता है किसी ने हाथ जमा दिया?"

"अरे यह तो कुछ भी नहीं। मैं बस सोफ़े से गिर पड़ा था। इससे भी बुरी हालत होती रहती है।"

"हां, भई, कुछ न पूछो! मैं कभी-कभी पूरे ज़ोर से घूमता हुआ दीवार से जा टकराता हूं, सीधे सिर के बल!"

"यही ग़नीमत है कि तेरा सिर काठ का है।"

"फिर भी दर्द तो होता ही है। फुर्र... ख़ुद टक्कर खाकर देख, तब पता चलेगा।"

मसख़रे ने बस अपनी झांझ बजा दी। वह बड़ा मनमौजी था।

प्योत्र इवानोविच यानी पेत्रूश्का-भांड़ आया और अपने साथ ढेर सारे मेहमान ले आया: अपनी घरवाली मत्योना इवानोव्ना, जर्मन डाक्टर कार्ल इवानोविच और बड़ी-सी नाकवाले बंजारे को। बंजारा अपने साथ तीन टांगोंवाला घोड़ा भी खींच लाया था।

"लो, वान्का, करो मेहमानों का आदर-सत्कार!" पेत्रूश्का ने अपनी नाक पर उंगली पटपटाते हुए कहा। "सब एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर हैं। अकेली मेरी मत्योना इवानोव्ना ही सबकी टक्कर की है। बड़ी शौक़ीन है चाय पीने की।"

"चाय भी मिलेगी, पेत्रूश्का," वान्का ने जवाब दिया। "अच्छे मेहमानों के आने पर हमेशा ख़ुशी होती है। बैठिये, मत्योना इवानोव्ना! कार्ल इवानोविच, तशरीफ़ रखिये।"

इसके बाद भालू और ख़रगोश भी आये, फिर दादी का भूरा बकरा बत्तख़ के साथ आया और आये मुर्ग़ा व भेड़िया। सभी ढंग से बैठ गये।

सबसे आख़िर में अल्योनुश्का का जूता और अल्योनुश्का की बुहारी आयी। उन्होंने देखा–कहीं ख़ाली जगह नहीं है। तब बुहारी ने कहा:

"कोई बात नहीं, मैं तो कोने में ही खड़ी हो लूंगी।"

जूते ने कुछ नहीं कहा और चुपके से सोफ़े के नीचे खिसक गया। जूता थोड़ा घिसा हुआ था, तो भी उसकी बड़ी शान थी। उसे बस अपने छेद पर शर्म आती थी, जो ऐन नोक पर हो गया था। पर ख़ैर, सोफ़े के नीचे किसी को कुछ नहीं दिखेगा।

"ऐ, बजाओ ढोल-बाजा!" वान्का ने हुक्म दिया।

ढोल बजने लगा: ढम-ढम! ढम-ढम-ढम! तुरही बजने लगी: तू-तू-तू! और देखते ही देखते कमरे में रौनक़ छा गई, सब मेहमान ख़ुश थे।

(२)

ख़ूब ज़ोर-शोर से जन्मदिन मनाया जाने लगा। ढोल अपने आप बज रहा था और तुरही भी, लट्टू फ़ुर्र-फ़ुर्र करता घूम रहा था, मसख़रा झांझ बजा रहा था और पेत्रूश्का गला फाड़ रहा था। वाह, कितने मज़े थे!

"ख़ूब मौज करो, दोस्तो!" पटसन के अपने घुंघराले बालों पर हाथ फेरता हुआ वान्का कहता जा रहा था।

आन्या और कात्या अपनी पतली-पतली आवाज़ में खिलखिलाकर हंस रही थीं, बेढब भालू बुहारी के साथ नाच रहा था, भूरा बकरा बत्तख़ के साथ उछल-कूद रहा था, मसख़रा कलाबाज़ियां खाता हुआ अपना हुनर दिखा रहा था, डाक्टर कार्ल इवानोविच मत्र्योना इवानोव्ना से पूछ रहा था:

"मत्र्योना इवानोव्ना, आपके पेट में दर्द तो नहीं?"

"यह आप क्या कहते हैं, कार्ल इवानोविच?" मत्र्योना इवानोव्ना बुरा मान गयी थी। "मेरे पेट में दर्द क्यों होने लगा?"

"लाइये, ज़रा जीभ दिखाइये।"

"ओह, जाइये भी न यहां से।"

"मैं यहां हूं," चांदी की चमची की पतली-सी आवाज़ सुनाई दी। अल्योनुश्का इस चमची से दलिया खाती थी। चमची अभी तक चुपचाप मेज़ पर पड़ी हुई थी, पर जब डाक्टर ने जीभ की बात की, तो उससे नहीं रहा गया और वह उछल पड़ी। डाक्टर हमेशा इसी चमची से अल्योनुश्का की जीभ देखते थे।

"अरे नहीं बाबा, नहीं ज़रूरत है तुम्हारी!" मत्र्योना इवानोव्ना चीखने लगी और ऐसे अजीब ढंग से हाथ हिलाने लगी, मानो वह पवन-चक्की हो।

"ठीक है, मैं कोई तुम्हारे गले तो पड़ नहीं रही," चमची रूठ गई।

उसको तो गुस्सा भी चढ़ चला था, पर तभी लट्टू उसके पास जा पहुंचा और वे दोनों नाचने लगे। लट्टू फ़ुर्र-फ़ुर्र कर रहा था और चमची टनटना रही थी। अल्योनुश्का के जूते से भी नहीं रहा गया, वह सोफ़े के नीचे से निकल आया और बुहारी के कान में फुसफुसाकर बोला:

"तुम कितनी अच्छी हो, बुहारी!"

बुहारी ने पलकें झुका लीं और एक ठंडी आह भरी। जब वह किसी को अच्छी लगती, तो उसे बड़ी ख़ुशी होती।

वह बेचारी बड़ी सीधी-सादी थी और दूसरों की तरह कभी भी नख़रा-वख़रा नहीं करती थी। पर ये जो गुड़ियां थीं न – मल्योना इवानोव्ना, आन्या और कात्या – ये हमेशा दूसरों की कमियां ढूंढ़ती और उन पर हंसती रहती थीं: मसख़रा लंगड़ा है, पेत्रूश्का की नाक लंबी है, कार्ल इवानोविच गंजा है और बंजारा तवे-सा काला, पर सबसे ज़्यादा तो वे वान्का का मज़ाक़ उड़ाती थीं।

"मुझे तो वह गंवार लगता है," कात्या कहती।

"और डींगें भी बहुत हांकता है," आन्या अपनी ओर से जोड़ती।

हंसी-ठिठोली करके वे सब खाना खाने बैठ गये। बिल्कुल असली जन्मदिन जैसी दावत रही, हां बीच-बीच में कुछ छोटी-मोटी गड़बड़ भी होती ही रही। भालू भूल से टिकिया की जगह ख़रगोश को ही खाने लगा था। चमची को लेकर लट्टू और बंजारे के बीच हाथापाई होते-होते बची। बंजारा चमची को चुराना चाहता था और उसे जेब में छिपा ही रहा था। मशहूर लड़ाका पेत्रूश्का अपनी घरवाली से उलझ पड़ा और झगड़ा भी तो बेबात का ही था।

"मल्योना इवानोव्ना, हटाइये गुस्सा," कार्ल इवानोविच ने उसे समझाया। "पेत्रूश्का तो भला आदमी है। शायद तुम्हारे सिर में दर्द है? मेरे पास बहुत अच्छी पुड़िया है।"

"रहने दो इसे, डाक्टर," पेत्रूश्का बोला। "इससे भी क्या कोई पार पा सकता है। वैसे मैं इसे बहुत प्यार करता हूं। मल्योना इवानोव्ना, आओ मैं तुम्हें चूम लूं।"

"हुर्रा!" वान्का चिल्लाया। "यह हुई न बात! झगड़ा करने से तो यह कहीं अच्छा है। मुझसे तो यह सहा ही नहीं जाता कि कोई झगड़ा करे। लीजिये, उधर देखिये तो।"

और तभी अचानक ऐसा ऊधम मच गया कि पूछो मत।

ढोल बज रहा था: ढम-ढम! ढम-ढम-ढम! तुरही बज रही थी: तू-तू! तू-तू-तू! मसख़रे की झांझ झनक रही थी, चांदी की चमची अपनी बारीक-बारीक आवाज़ में हंस रही थी, लट्टू फुर्र-फुर्र करता चक्कर खा रहा था और ख़रगोश मस्त होकर चिल्ला रहा था: बो-बो-बो! चीनी मिट्टी का कुत्ता ज़ोरों से भौंक रहा था, रबड़ की बिल्ली बड़े प्यार से म्याऊं-म्याऊं कर रही थी और भालू अपने पैर से इतने ज़ोर से ताल दे रहा था कि फ़र्श कांप रहा

था। दादी का भूरा बकरा सबसे ज्यादा मस्ती में था। एक तो वह सबसे अच्छा नाच रहा था और फिर बड़े अनोखे ढंग से अपनी दाढ़ी हिला रहा था और फटी-फटी आवाज़ में मिमिया रहा था: में-एं-बें!

(३)

आख़िर यह सब हुआ कैसे? अब तो शुरू से बात बतायी भी नहीं जा सकती। सिर्फ़ अल्योनुश्का का जूता ही सारी बात जानता था। वह समझदार निकला और ठीक समय पर ही सोफ़े के नीचे छिप गया।

हां, तो बात यह हुई कि पहले लकड़ी की गिट्टियां वान्का को बधाई देने आईं... नहीं, ऐसे नहीं। बात यहां से नहीं शुरू हुई थी। गिट्टियां सचमुच आई थीं, लेकिन क़सूर सारा काली आंखोंवाली कात्या का था। हां, यही सच है! दावत अभी चल ही रही थी कि यह छैल-छबीली आन्या के कान में फुसफुसायी:

"क्या ख़्याल है, आन्या, यहां सबसे सुंदर कौन है?"

कोई ख़ास बात नहीं थी इस सवाल में, लेकिन मत्र्योना इवानोव्ना का पारा चढ़ गया। उसने कात्या के मुंह पर ही कह दिया:

"तुम क्या सोचती हो—मेरा पेत्रूश्का बदसूरत है?"

"कोई ऐसा नहीं सोचता, मत्र्योना इवानोव्ना," कात्या ने सफ़ाई देनी चाही, लेकिन बात बिगड़ चुकी थी।

"हां, नाक उसकी ज़रूर बड़ी है," मत्र्योना इवानोव्ना कहती जा रही थी। "लेकिन यह तो तभी पता चलता है, जब कोई बग़ल से पेत्रूश्का को देखे। और फिर उसे हमेशा चीख़ते रहने और सब के साथ लड़ने की बुरी आदत है, पर फिर भी है तो वह भला आदमी ही। और जहां तक अक़्ल का सवाल है..."

गुड़ियां इतने ज़ोर-शोर से बहस करने लगीं कि सब का ध्यान उनकी ओर खिंच गया। और सबसे पहले तो पेत्रूश्का ने ही अपनी टांग बीच में अड़ायी। वह चिल्लाया: "बिल्कुल ठीक कहती हो, मत्र्योना इवानोव्ना, सबसे सुंदर तो यहां मैं ही हूं!"

बस फिर तो सभी मर्द रूठ गये। वाह जी, क्या अपने मुंह मियां-मिट्ठू बनता है यह पेत्रूश्का! छी, सुनना भी अच्छा नहीं लगता! मसख़रा बातें बनाने में तेज़ नहीं था, इसलिए चुपचाप ही बुरा मानने लगा, लेकिन डाक्टर कार्ल इवानोविच ने ख़ूब ज़ोर से कहा:

"मतलब यह कि हम सब बदसूरत हैं? मुबारक हो, भाइयो।"

आन की आन में हो-हल्ला मचने लगा। बंजारा अपनी बोली में कुछ चिल्ला रहा था, भालू गुर्रा रहा था, भेड़िया हूक रहा था, भूरा बकरा मिमिया रहा था, लट्टू भिनभिना रहा था—सब के सब नाराज़ थे।

"जाने दो, भाइयो!" वान्का सब को मना रहा था। "पेत्रूश्का की बातों पर ध्यान मत दो। उसने तो ऐसे ही मज़ाक़ किया है।"

लेकिन सब बेकार था। कार्ल इवानोविच सबसे ज़्यादा गुस्से में था। वह मेज़ पर मुक्का मार-मारकर चिल्ला रहा था:

"देखो भाइयो, क्या सत्कार हो रहा है! क्या कहने हैं! क्या बेइज़्ज़ती करने के लिए ही हमें बुलाया गया था?"

"प्यारे दोस्तो, प्यारे मेहमानो!" वान्का सबसे ज़्यादा ज़ोर से चिल्लाने की कोशिश कर रहा था। "अगर यही बात है, तो सुनिये, यहां सिर्फ़ एक बदसूरत आदमी है—वह मैं हूं। अब तो आप ख़ुश हैं?"

फिर... फिर क्या हुआ? हां, हां, हुआ यह कि कार्ल इवानोविच गुस्से में आपे से बाहर हो गया और पेत्रूश्का की ओर बढ़ने लगा। वह उंगली दिखाकर धमका और कह रहा था:

"अगर मैं पढ़ा-लिखा आदमी न होता और अगर मुझे अच्छे लोगों के बीच उठने-बैठने का तौर-तरीक़ा न आता होता, तो मैं सीधे-सीधे कह देता कि तुम निरे उल्लू हो।"

वान्का पेत्रूश्का का लड़ाकू स्वभाव जानता था, इसलिए वह डाक्टर और उसके बीच में खड़ा हो जाना चाहता था, लेकिन रास्ते में उसकी मुट्ठी पेत्रूश्का की लंबी नाक से जा टकरायी। पेत्रूश्का को लगा कि उसे वान्का ने नहीं, डाक्टर ने मारा है। बस फिर क्या हुआ, पूछो मत! पेत्रूश्का ने डाक्टर को दबोच लिया। एक ओर को बैठा बंजारा बेबात ही मसख़रे की पिटाई करने लगा, भालू गुर्राता हुआ भेड़िये पर टूट पड़ा, लट्टू अपने काठ के सिर से बकरे को मारने लगा—बस पूरा दंगल ही छिड़ गया। गुड़ियां अपनी पतली-पतली आवाज़ों में चीख़ रही थीं और तीनों डर के मारे बेहोश हो गयीं।

"हाय, मैं मरी!" मल्योना इवानोव्ना सोफ़े से गिरती हुई चिल्ला रही थी।

"अरे भाइयो, यह क्या कर रहे हो?" वान्का गला फाड़ रहा था। "आज मेरा जन्मदिन है। यह तो पूरी बेअदबी है!"

सब आपस में गुत्थमगुत्था हो गये थे। कुछ पता नहीं चलता था कौन किसको पीट रहा है। वान्का बेकार ही सब को अलग-अलग करने की कोशिश कर रहा था और आख़िर ख़ुद ही सब को पीटने लगा। वह सबसे ताक़तवर था, इसलिए मेहमानों की ख़ासी मरम्मत हो रही थी।

"बचाओ! अरे बाप रे! बचाओ! मार डाला, मुझे तो मार ही डाला, बचाओ!" पेत्रूश्का सबसे ऊंचे चिल्ला रहा था और साथ ही डाक्टर को ख़ूब ज़ोर से पीटने की कोशिश कर रहा था।

इस आफ़त से बस अकेला जूता बचा रहा था। वह ठीक समय पर सोफ़े के नीचे छिप गया था। डर के मारे उसने आंखें भी मूंद लीं, पर तभी ख़रगोश उसके पीछे आ छिपा। वह भी इस मुसीबत से बचना चाहता था।

"अरे, तू कहां आ घुसा?" जूता बड़बड़ाया।

"चुप रह, नहीं तो सुन लेंगे और फिर दोनों की धुनाई हो जायेगी," ख़रगोश ने उसे मनाया। वह अपनी भेंगी आंख से जूते की नोक में बने छेद में से देख रहा था। "उफ़ कैसा कमबख़्त है यह पेत्रूश्का! सब को पीट रहा है और ख़ुद ही गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा है। क्या कहने हैं मेहमान के! और मैंने मुश्किल से भेड़िये से जान बचायी, उफ़! याद करके भी डर लगता है। लो बत्तख़ तो पंजे ऊपर किये पड़ी है। मार दिया बेचारी को।"

"अरे, कैसा बुद्धू ख़रगोश है तू। समझता नहीं—सब गुड़ियां बेहोश हैं और बत्तख़ भी उनकी देखादेखी वैसा ही कर रही है।"

बड़ी देर तक मार-पीट चलती रही। आख़िर वान्का ने गुड़ियों को छोड़कर बाक़ी सब मेहमानों को भगा दिया। मल्योना इवानोव्ना बेहोश पड़ी-पड़ी तंग आ गयी थी। उसने एक आंख खोली और पूछा:

"अरे, मैं कहां हूं? डाक्टर, देखो मैं ज़िंदा हूं कि नहीं?"

किसी ने उसे जवाब नहीं दिया। तब मल्योना इवानोव्ना ने दोनों आंखें खोल लीं। कमरा ख़ाली था। वान्का कमरे के बीचोंबीच खड़ा हुआ खोया-खोया-सा इधर-उधर देख रहा था। आन्या और कात्या भी होश में आ गयीं और वे भी हैरान हो गयीं।

"हाय, कैसा हंगामा मचा था यहां," कात्या ने कहा। "क्या कहने हैं वान्का के! ख़ूब अच्छा जन्मदिन मना रहा है।"

तीनों गुड़ियां एक साथ वान्का को बुरा-भला कह रही थीं और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे। उसे भी किसी ने मारा था, उसने भी किसी को मारा था, लेकिन क्यों, किसलिए यह उसे पता नहीं था।

"मुझे कुछ पता नहीं, कैसे यह सब हुआ," वह हाथ हिलाते हुए बोला। "सबसे ज्यादा दुख तो इस बात का है कि वे सब मुझे अच्छे लगते हैं। सब के सब।"

"हमें मालूम है कि यह कैसे हुआ," सोफ़े के नीचे से जूता और ख़रगोश चिल्लाये। "हमने सब कुछ देखा है!"

"तो यह सारी करनी तुम्हारी ही है!" मल्योना इवानोव्ना उन पर बरस पड़ी। "हां, हां, तुम्हारी ही। तुम दोनों ने ही यह सब झमेला खड़ा किया और ख़ुद छिप गये।"

"हां, हां, इनका ही क़सूर है!" आन्या और कात्या एक साथ चिल्ला उठीं।

"अच्छा, तो यह बात है!" वान्का ने ख़ुश होकर कहा। "भागो यहां से, बदमाशो। तुम भले लोगों को लड़ाने के लिए ही आते हो।"

जूता और ख़रगोश जैसे-तैसे खिड़की में से बाहर कूद गये और शामत से बचे।

"अभी मैं तुम्हारी ख़बर लेती हूं!" मल्योना इवानोव्ना उन्हें पीछे से घूंसा दिखा रही थी। "उफ़, कैसे कमीने लोग होते हैं इस दुनिया में! बत्तख़ से पूछ लो, वह भी यही कहेगी।"

"हां, हां," बत्तख़ ने हामी भरी। "मैंने ख़ुद देखा था कैसे वे दोनों सोफ़े के नीचे छिप गये थे।"

बत्तख़ हमेशा हर किसी की हां में हां मिला देती थी।

"मेहमानों को वापस बुलाना चाहिए," कात्या कह रही थी। "हम अभी और मजे करेंगे।"

मेहमान ख़ुशी-ख़ुशी लौट आये। किसी की आंख पर नील पड़ा हुआ था और कोई लंगड़ा रहा था। पेत्रूश्का की लंबी नाक को ही सबसे ज्यादा झेलना पड़ा था।

"ओफ़, बदमाश कहीं के!" सब के सब ख़रगोश और जूते को एक स्वर में गालियां दे रहे थे। "हम तो कभी सोच भी नहीं सकते थे कि ये इतने कमबख़्त हैं।"

"उफ़, कितना थक गया मैं! हाथ तो बिल्कुल टूटे जा रहे हैं," वान्का शिकायत कर रहा था। "पर ख़ैर, बीती बात को क्या याद करना। मैं कभी मन में गिला-गुस्सा नहीं रखता। चलो, भई, ढोल-बाजा बजाग्रो!"

फिर से ढोल बजने लगा: ढम-ढम! ढम-ढम-ढम! तुरही बजने लगी: तू-तू! तू-तू-तू! श्रौर पेत्रूश्का लगातार चिल्लाये जा रहा था:

"हुर्रा, वान्का!"

गौरैया, कवई मछली और हंसमुख लड़का याशा

बड़े ही मज़े की बात
हुई थी ...

(१)

गौरैया और कवई मछली बड़ी पक्की सहेलियां थीं। गर्मियों में गौरैया रोज़ाना नदी पर उड़ आती और चिल्लाती :

"नमस्ते, कवई बहन! कहो कैसी हो?"

"बस, ठीक ही हूं," कवई मछली जवाब देती। "मेरे घर आओ न, बहन! कितनी अच्छी जगह है यहां। मन्द-मन्द बहता गहरा-गहरा पानी है और पानी में ठंडक है। पानी में उगते घास-पात की तो यहां कोई कमी ही नहीं! आओ, मैं तुम्हें मेंढक के स्वादिष्ट अंडे खिलाऊंगी और जल-कीड़े भी।"

"शुक्रिया, बहन! मैं तो ख़ुशी-ख़ुशी आती, पर पानी से डर लगता है। तुम ही उड़ आओ न मेरी छत पर। मैं तुम्हें बेरियां खिलाऊंगी—हमारे यहां तो पूरा बाग़ है, फिर हम रोटी का टुकड़ा ढूंढ़ लेंगी और जई के दाने और चीनी भी और ज़िंदा मच्छर भी। तुम्हें तो चीनी अच्छी लगती है, न?"

"वह कैसी होती है?"

"ऐसी सफ़ेद-सी।"

"जैसी हमारी नदी में रोड़ी है?"

"हां, वैसी ही। पर तुम्हारी रोड़ी खाई थोड़े ही जा सकती है, मगर चीनी बड़ी मीठी होती है। चलो, उड़ चलें छत पर?"

"नहीं, मुझे उड़ना नहीं आता और फिर हवा में मैं सांस भी नहीं ले सकती। क्यों न हम नदी में साथ-साथ तैरें? मैं तुम्हें नदी की सैर कराऊंगी।"

गौरैया पानी में जाती, घुटने-घुटने पानी तक तो वह चली जाती, पर आगे बढ़ते हुए डर लगता। न बाबा, ऐसे तो मैं डूब ही जाऊंगी। गौरैया नदी के निर्मल जल से अपनी प्यास बुझाती और जब बहुत गर्मी होती, तो कहीं छिछले पानी में नहा लेती, अपने पंख धो लेती और फिर छत पर वापस उड़ जाती। हां, कवई और गौरैया अच्छी सहेलियां थीं और वे अकसर इधर-उधर की बातें करती रहती थीं।

"तुम क्या हमेशा पानी में रहते-रहते तंग नहीं आ जातीं?" गौरैया कई बार हैरान होती। "गीली जगह है, सर्दी लग सकती है।"

उधर कवई भी हैरान होती :

"क्यों बहन, तुम क्या उड़ते-उड़ते उकता नहीं जातीं? कितनी गर्मी है धूप में। तुम सांस कैसे लेती हो? मेरे यहां तो हमेशा ठंडक रहती है, जी भर कर तैरा जा सकता है। गर्मियों में सभी नदी में नहाने ग्राते हैं। लेकिन तुम्हारी छत पर कौन ग्राता होगा?"

"ग्राते क्यों नहीं, बहन? जरूर ग्राते हैं। मेरा एक बड़ा ग्रच्छा दोस्त है याशा, वह चिमनियां साफ़ करता है। वह हमेशा मेरे यहां ग्राता है। बड़ा हंसमुख है याशा—हमेशा गाता रहता है। चिमनी साफ़ करता जाता है ग्रौर साथ ही गुनगुनाता जाता है। कभी-कभी वह हमारी ढलवां छत के ऊपरी कोने पर ग्राराम करने बैठ जाता है ग्रौर ग्रपनी रोटी निकालकर खाने लगता है, मैं रोटी के टुकड़े चुगती जाती हूं। ख़ूब मेल-मिलाप है हम दोनों का तो। मुझे भी हंसना-गाना ग्रच्छा लगता है।"

दोनों सहेलियों पर मुसीबतें भी एक-सी ग्राती थीं। जाड़े को ही लीजिये: कैसे ठिठुरती थी बेचारी गौरैया! उफ़, कैसी कड़ाके की ठंड पड़ती थी किसी-किसी दिन! गौरैया को लगता था कि वह ठंड से ग्रकड़ ही जायेगी। वह ग्रपने रोयें फुला लेती, पैर ग्रपने नीचे समेट लेती ग्रौर हिले-डुले बिना ऐसे ही बैठी रहती। ठंड से बचने का एक ही रास्ता था कि जैसे तैसे किसी चिमनी में घुस जाये ग्रौरं वहां उसकी दीवार से सटकर पड़ी रहे। लेकिन वहां भी ख़तरा था। एक बार तो ग्रपने सबसे ग्रच्छे दोस्त याशा की मेहरबानी से ही गौरैया की जान ज़ाते-जाते बची।

हुग्रा यह कि गौरैया चिमनी में बैठी ग्रपने को गर्मा रही थी ग्रौर तभी याशा ग्रा गया। उसने चिमनी साफ़ करने के लिए ग्रपना ब्रुशवाला लोहे का गोला जो उसमें डाला, तो ग्रंदर बैठी बेचारी गौरैया की तो खोपड़ी फूटते-फूटते बची। वह झट से फुदककर बाहर निकल ग्रायी—चिमनी साफ़ करनेवाले की तरह कालिख से लिपी-पुती ग्रौर लगी याशा की ख़बर लेने:

"यह तुम क्या करते हो याशा? ऐसे तो तुम मुझे मार ही डालोगे।"

"मुझे कैसे मालूम हो सकता था कि तू चिमनी में बैठी है?"

"ग्रागे से होशियार रहना। ग्रगर मैं लोहे का गोला तुम्हारे सिर पर दे मारूं, तो यह कोई ग्रच्छी बात होगी?"

कवई मछली भी जाड़ों में कुछ ग्राराम से नहीं रहती थी। नदी की सतह जम जाती, वह नदी के तल में किसी गहरे गड्ढे में जा बैठती ग्रौर वहां सारा-सारा दिन ऊंघती रहती। वहां ग्रंधेरा होता ग्रौर ठंड। मछली का हिलने-डुलने को भी मन न होता। कभी-कभी गौरैया के बुलाने पर वह नदी पर जमी बर्फ़ में बने छेद पर जाती। गौरैया पानी पीने के लिए वहां ग्राती ग्रौर चिल्लाती:

"कवई बहन, ज़िंदा तो हो न?"

"ज़िंदा हूं, बहन," कवई मछली उनींदी ग्रावाज़ में जवाब देती। "पर हर वक़्त नींद ही ग्राती रहती है। बड़ा गंदा मौसम है। हमारे यहां सब सो रहे हैं।"

"हमारा भी कोई ख़ास ग्रच्छा हाल नहीं है, बहन। क्या किया जाये, सब सहना पड़ता है। उफ़, कैसी ठंडी हवाएं चलती हैं! यहां तो बहन सोया भी नहीं जाता। मैं तो बस एक पैर पर कूदती रहती हूं, ताकि शरीर में थोड़ी गर्मी ग्राये। ग्राते-जाते लोग देखते हैं ग्रौर कहते हैं: 'देखो, गौरैया कैसे मस्ती में नाच रही है!' हाय, कब गर्मी ग्रायेगी?! तुम फिर सो गई, क्या, बहन?"

गर्मी ग्राती, तो ग्रपनी मुसीबतें लाती। एक बार बाज़ ने मील भर तक गौरैया का पीछा किया, बड़ी मुश्किल से वह बेचारी नदी के सरकंडों में छिप पाई।

"उफ़, बाल-बाल बची!" बाद में गौरैया ने हांफते-हांफते कवई मछली के सामने ग्रपना दुखड़ा रोया। "बदमाश कहीं का! ग्रगर कहीं उसकी पकड़ में ग्रा जाती, तो बस ग्रपना काम तमाम था।"

"यह तो हमारे पाइक मच्छ सा लगता है," कवई मछली ने ग्रपनी सहेली को तसल्ली देते हुए कहा। "कुछ दिन पहले मैं भी उसका निवाला बनते-बनते बची। ऐसे बिजली की तरह लपका था कमबख़्त। मैं ग्रपनी कुछ सहेलियों के साथ तैरने निकली ही थी, मैंने सोचा यह कोई लट्ठा पड़ा हुग्रा है, पर यह लट्ठा तो ऐसे मेरी ग्रोर लपका... पता नहीं, ये पाइक मच्छ होते ही क्यों हैं। बड़ी हैरानी होती है मुझे ग्रौर कुछ समझ में नहीं ग्राता।"

"मेरी भी कुछ समझ में नहीं ग्राता। मुझे लगता है कि बाज़ कभी पाइक मच्छ था ग्रौर पाइक मच्छ बाज़। पक्के बदमाश हैं दोनों के दोनों!"

(२)

बस ऐसे ही जिये जा रही थीं गौरैया ग्रौर कवई मछली–जाड़ों में ठंड से ठिठुरती, गर्मियों में ख़ुश होती हुई। ग्रौर हंसमुख यांशा ग्रपनी चिमनियां साफ़ करता ग्रौर गाने गाता रहता था। हर किसी का ग्रपना काम ग्रौर ग्रपना सुख-दुख था।

गर्मियों की सुबह थी। याशा ने अपना काम ख़त्म कर लिया और बदन की कालिख उतारने नदी पर गया। वह सीटी बजाता जा रहा था कि अचानक बड़े ज़ोर का शोर-गुल सुनाई दिया। क्या हो गया? नदी के ऊपर चिड़ियों के झुंड के झुंड मंडरा रहे थे: यहां बत्तखें भी थीं और हंस भी, अबाबीलें और चाहे भी, कौवे और कबूतर भी। सब शोर मचा रहे थे, खिलखिलाकर हंस रहे थे, चिल्ला-चिल्लाकर कुछ कह रहे थे—कुछ समझ में नहीं आता था।

"ऐ, क्या हो गया?" याशा चिल्लाया।

"बस, कुछ हो ही गया है," एक छोटी-सी फ़ुदकी चिचियायी। "बड़े मज़े की बात है। वाह, कितने मज़े की बात! देखो, देखो हमारी गौरैया क्या कर रही है। बिल्कुल पागल हो गई है।"

फ़ुदकी अपनी बारीक-सी आवाज़ में हंसी। उसने अपनी पूंछ घुमायी और नदी के ऊपर बहुत ऊंची उड़ गयी।

याशा नदी के किनारे पहुंचा ही था कि गौरैया सीधे उसके ऊपर ही उड़ आयी। बड़ी डरावनी-सी लग रही थी वह: चोंच खुली हुई, आंखें अंगारों-सी जल रही थीं और रोएं सारे खड़े हुए थे।

"क्या हुआ गौरैया रानी? क्यों इतना शोर मचा रही हो?" याशा ने पूछा।

"मैं इसे मज़ा चखाऊंगी!" गौरैया ग़ुस्से से लाल-पीली होती हुई गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही थी। "इसने मुझे समझा क्या है? नहीं, मैं मज़ा चखा के छोड़ूंगी इस कवई-मवई को! याद रखेगी यह मुझे, शैतान कहीं की!"

"इसकी बातों पर कान नहीं दो!" नदी में से कवई ने याशा को आवाज़ दी। "यह सब झूठ बोलती है।"

"मैं झूठ बोलती हूं?" गौरैया चिल्लायी। "और वह कीड़ा किसने ढूंढ़ा था? यह भी ख़ूब रही – मैं झूठी हूं! इतना मोटा-ताज़ा कीड़ा था! मैंने किनारे पर रेत खोद-खोद कर उसे निकाला था। इतनी मेहनत की। बस, उसे चोंच में दबाकर घर ले जा रही थी, अपने घोंसले में। आख़िर मेरे बाल-बच्चे हैं, उनका पेट भरना है मुझे कि नहीं? मैं कीड़ा लेकर नदी पर उड़ी ही थी कि यह कमबख़्त कवई—पाइक इसे खा जाए!—चिल्ला पड़ी: 'बाज़!' मेरी डर के मारे चीख़ निकल गई, कीड़ा पानी में गिर गया और वहां यह मुई कवई उसे हड़प गयी। तुम इसी को झूठ बोलना कहती हो? बाज़-वाज़ कोई था ही नहीं।"

"अरे, मैंने तो मज़ाक़ किया था," कवई अपनी सफ़ाई देने लगी। "कीड़ा सचमुच बड़ा मज़ेदार था।"

कवई के इर्द-गिर्द तरह-तरह की मछलियां इकट्ठी हो गयी थीं और हंस रही थीं। हां, ख़ूब उल्लू बनाया था कवई ने अपनी पुरानी सहेली को। और सबसे ज़्यादा हंसी की बात तो यह थी कि कैसे गौरैया उससे लड़ने चली थी। कभी इधर से, तो कभी उधर से वह कवई पर झपटती थी, पर कर कुछ नहीं पाती थी।

"मर जाये तू मेरा कीड़ा खाके!" गौरैया कवई को बुरा-भला कह रही थी। "मैं दूसरा खोद लूंगी। पर दुख तो इस बात का है कि कवई ने मुझे धोखा दिया है और ऊपर से मुझ पर ही हंस रही है। और मैं इसे अपनी छत पर बुलाया करती थी। क्या कहने हैं ऐसी सहेली के! पूछ लो याशा से, वह भी यही कहेगा। हमारी इतनी अच्छी दोस्ती है और खाना भी हम इकट्ठे खाते हैं: वह रोटी खाता है और मैं टुकड़े चुगती हूं।"

"ज़रा ठहरो, भई! यह बात साफ़ करनी चाहिए," याशा ने कहा। "बस मुझे हाथ-मुंह धो लेने दो, फिर मैं तुम्हारे झगड़े का ईमानदारी से फ़ैसला कर दूंगा। और तू, गौरैया, ज़रा अपना गुस्सा ठंडा कर।"

"मेरा तो कोई क़सूर है नहीं, मुझे क्या फ़िक्र है!" गौरैया चिचियाई। "पर मैं इस मुई कवई को अपने साथ ऐसा मज़ाक़ करने का मज़ा चखाकर रहूंगी!"

चिमनियां साफ़ करनेवाला हंसमुख याशा किनारे पर बैठ गया। पास ही एक पत्थर पर उसने अपने खाने की पोटली रखी, हाथ-मुंह धोया और फिर बोला:

"आओ, अब झगड़ा निबटाते हैं। कवई मछली है और गौरैया चिड़िया। ठीक है न?"

"ठीक है! ठीक है!" मछलियां और चिड़ियां सभी एक साथ चिल्लायीं।

"तो, अब आगे बढ़ते हैं! मछली को पानी में रहना चाहिए और चिड़िया को हवा में। ठीक है न? अब कीड़ा जो है, वह ज़मीन में रहता है। अच्छी बात। अब देखो..."

याशा ने अपनी पोटली खोली और भूरी डबल-रोटी का एक टुकड़ा पत्थर पर रखा – यही उसका सारा खाना था। फिर उसने कहा:

"यह देखो – यह क्या है? यह रोटी है। मैंने काम करके यह रोटी कमायी है और अब मैं इसे खा लूंगा। खाकर ऊपर से पानी पी लूंगा। ठीक? तो, मैं खाना खा लूंगा और किसी का कुछ नहीं छीनूंगा। अब मछलियां और चिड़ियां भी खाना खाना चाहती हैं। तुम्हारा अपना-

अपना खाना है। तो फिर झगड़ा किस बात का? गौरैया ने रेत खोदकर कीड़ा निकाला, तो यह उसकी कमाई हुई और इसका मतलब यह हुआ कि कीड़ा गौरैया का है।"

"ज़रा ठहरो, याशा," चिड़ियों के झुंड में से एक पतली-सी आवाज़ आयी। सभी चिड़ियां एक तरफ़ को हट गईं और नन्ही टिटहरी अपनी पतली-पतली टांगों पर फुदकती हुई याशा के पास आ गयी।

"यह सच नहीं, याशा।"

"क्या सच नहीं?"

"कीड़े को तो मैंने ढूंढ़ा था। बत्तख़ों से पूछ लो, उन्होंने देखा था। मैंने उसे ढूंढ़ा और तभी यह गौरैया उड़ती आयी और कीड़ा चुरा ले गयी।"

याशा चक्कर में पड़ गया। मामला गड़बड़ था।

"यह कैसे हो सकता है?" वह बुदबुदाया। "ऐ गौरैया, तू क्या सचमुच झूठ बोलती है?"

"नहीं, मैं झूठ नहीं बोलती, टिटहरी झूठ बोल रही है। बत्तख़ों के साथ इसकी मिली-भगत है।"

"नहीं भई, बात कुछ जंचती नहीं। वैसे कीड़े तो कोई बहुत बड़ी नेमत नहीं, पर चोरी करना बुरी बात है। और जो चोरी करेगा, वह झूठ भी बोलेगा। ठीक है न?"

"ठीक है! ठीक है!" सब एक साथ चिल्लाये। "पर तुम कवई मछली और गौरैया के झगड़े का फैसला तो कर ही दो। कौन सच्चा है? इन्हीं दोनों ने शोर मचाया, झगड़ा किया और हम सब को भी परेशान कर डाला।"

"कौन सच्चा है? शैतान हो तुम दोनों कवई और गौरैया। ओह, कितनी शैतान हो। अभी मैं तुम दोनों को ही सज़ा देता हूं, ताकि आगे के लिए तुम्हें सबक़ मिल जाये। चलो, करो फिर से दोस्ती, फ़ौरन!"

"ठीक है!" सब एक स्वर में चिल्लाये। "करें दोस्ती!"

"और टिटहरी को, जिसने इतनी मेहनत की थी, मैं रोटी दूंगा," याशा ने कहा। "सब ख़ुश हो जायेंगे।"

"बिल्कुल ठीक है!" फिर से सब चिल्लाये।

याशा ने रोटी उठाने के लिए हाथ बढ़ाया, पर वहां रोटी थी ही नहीं। वह इधर झगड़ा निबटाने में लगा रहा और उधर गौरैया उसकी रोटी चट कर गयी।

"ओह चोट्टी! ओह बदमाश!" सभी मछलियां और चिड़ियां नाराज़ हो रही थीं।

और सब चोर का पीछा करने लगीं। रोटी का टुकड़ा भारी था और इसलिए गौरैया उसे लेकर ज़्यादा दूर तक नहीं उड़ पायी थी। नदी के ऊपर ही दूसरी चिड़ियों ने उसे जा पकड़ा। छोटी-बड़ी सभी चिड़ियां चोर पर टूट पड़ीं।

सब गुत्थमगुत्था हो गयीं। हर कोई रोटी छीन रही थी, रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े नदी में गिर रहे थे। और फिर बड़ा टुकड़ा ही नदी में जा गिरा। वहां मछलियां उस पर टूट पड़ीं। मछलियों और चिड़ियों में तो बस जंग ही छिड़ गयी। उन्होंने सारी रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये और सभी छोटे-छोटे टुकड़े खा गयीं। रोटी का नामोनिशान तक नहीं बचा। जब सारी रोटी ख़त्म हो गई, तो उन्हें ख़्याल आया कि उन्होंने यह क्या किया और सब की आंखें शर्म से झुक गयीं। वे तो चोर गौरैया को पकड़ने भागी थीं और ख़ुद ही चोरी की रोटी खा गयीं।

हंसमुख याशा किनारे पर बैठा था और यह सब देखकर हंस रहा था। बड़े ही मज़े की बात हुई थी। सब उसके पास से भाग गये थे, बस अकेली टिटहरी खड़ी रह गयी थी।

"तू क्यों नहीं उड़ती सब के पीछे?" याशा ने उससे पूछा।

"उड़ तो जाती, पर मैं इतनी छोटी-सी हूं। बड़ी चिडियां चोंच मार-मारकर मेरी जान ले लेंगी।"

"बस ऐसे ही ठीक है, टिटहरी। हम दोनों ही भूखे रह गये। शायद हमने अभी कम काम किया है।"

तभी अल्योनुश्का किनारे पर आ गयी। उसने याशा से पूछा कि वहां क्या हुआ था और सारी बात सुनकर ख़ूब हंसी।

"वाह, कितनी बुद्धू हैं ये सब, मछलियां भी और चिड़ियां भी! मैं होती तो सब कुछ बांट देती, कीड़ा भी और रोटी भी, और फिर कोई झगड़ता भी नहीं। कुछ दिन पहले मैंने चार सेब बांटे थे। पापा चार सेब लाये और बोले: 'मुझे और लीज़ा को आधे-आधे दे दो।' बस मैंने तीन हिस्से कर दिये: एक सेब पापा को दिया, दूसरा लीज़ा को और दो ख़ुद ले लिये।"

आख़िरी मक्खी की कहानी

ज़रा सोचो तो–
पांच कमरे और उनमें
उड़ती अकेली मक्खी–कितनी
शानदार बात है!

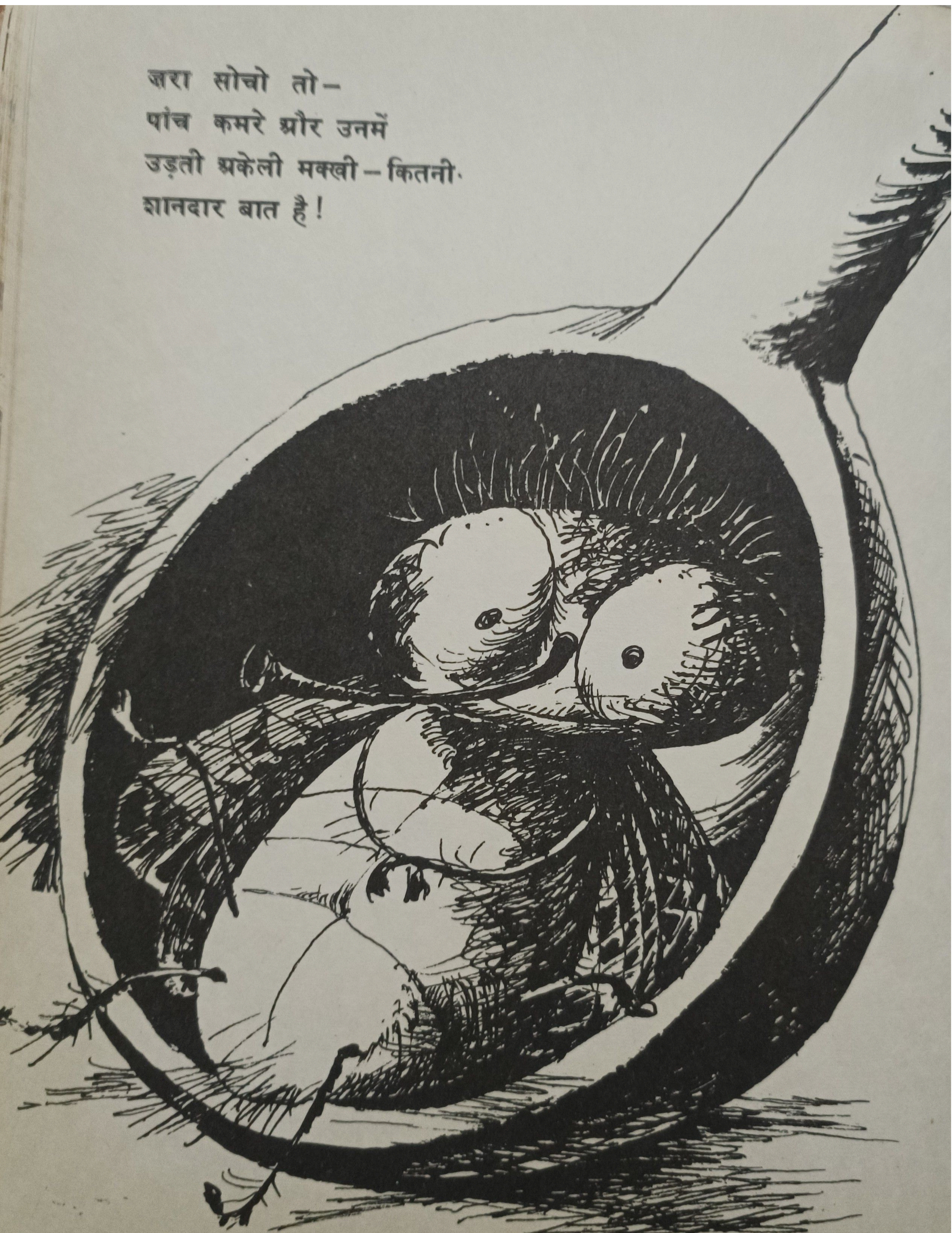

(१)

कितनी मौज थी गर्मियों में! वाह, क्या मजा था! अब तो सब कुछ बताना भी मुश्किल है। कितनी मक्खियां थीं–हज़ारों! वे उड़तीं, गुनगुनातीं, मौज मनातीं। एक छोटी मक्खी पैदा हुई, उसने अपने पंख सीधे किये और ख़ुशी से झूमने लगी। वह इतनी ख़ुश थी, इतनी ख़ुश थी कि बयान से बाहर। सबसे दिलचस्प बात तो यह थी कि सुबह से ही सब खिड़कियां और बरामदे के सब दरवाज़े खोल दिये जाते थे–जिस खिड़की में चाहो, उसी में उड़ो।

"कितने दयालु हैं लोग," एक खिड़की से दूसरी में उड़ती हुई नन्ही मक्खी हैरान होती हुई सोचती। "यह खिड़कियां हमारे लिए ही बनायी गयी हैं और लोग इन्हें हमारे लिए ही खोलते हैं। बहुत अच्छी बात है यह और बड़े ही मज़े की।"

वह हज़ारों बार बाग़ में गई। वहां हरी-हरी घास पर बैठकर वह लिलक की खिलती कलियों, लिंडन की कोमल कोंपलों और क्यारी में लगे फूलों को देखती और ख़ुश होती। वह माली को अभी जानती भी नहीं थी, वह अभी पैदा भी नहीं हुई थी और माली ने पहले से ही सब कुछ तैयार कर दिया था। वह सभी कुछ, जो एक नन्ही-सी मक्खी को चाहिये। कितना भला था यह माली! उसे ख़ुद उड़ना नहीं आता था, तो भी वह मक्खियों के लिए सब कुछ करता था। वह तो चलता भी कभी-कभी बड़ी मुश्किल से था–इधर-उधर डोलता जाता और जाने क्या भुनभुनाता रहता।

"कहां से आ जाती हैं ये कमबख़्त मक्खियां?" भला माली बड़बड़ाता।

शायद उस बेचारे को मक्खियों से ईर्ष्या होती थी, इसीलिए ऐसी बातें करता था। उसे तो बस क्यारियां खोदना, फूल लगाना और उन्हें पानी देना आता था, पर वह उड़ नहीं सकता था। नन्ही मक्खी जानबूझकर उसकी लाल नाक के ऊपर चक्कर लगाती रहती और उसे बहुत तंग करती।

वैसे सब लोग बहुत भले थे, बहुत-से काम तो वे मक्खियों की ख़ुशी के लिए ही करते थे। उदाहरण के लिए, अल्योनुश्का रोज़ाना सुबह दूध पीती और डबल रोटी खाती थी, फिर वह ओल्या चाची से चीनी की डली मांगती थी, यह सब वह सिर्फ़ इसलिए करती थी कि मक्खियों के लिए दूध की कुछ बिखरी बूंदें और सबसे बड़ी बात डबल-रोटी और चीनी के छोटे-छोटे टुकड़े मेज़ पर रह जाएं। भला इन टुकड़ों से अधिक मज़ेदार और क्या हो सकता है, ख़ास तौर पर जब पूरी सुबह उड़ते रहने से ख़ूब भूख लगी हो? और बावरचिन पाशा

तो अल्योनुश्का से भी ज़्यादा भली थी। वह हर रोज़ सुबह ख़ास तौर पर मक्खियों के लिए ही बाज़ार जाती थी और वहां से बहुत ही स्वादिष्ट चीज़ें लाती थी : गोश्त और कभी-कभी मछली, क्रीम और मक्खन। सारे घर में वह सबसे ज़्यादा मेहरबान औरत थी। वह ख़ूब अच्छी तरह से जानती थी कि मक्खियों को क्या चाहिए, हालांकि माली की ही तरह वह भी उड़ नहीं सकती थी। बहुत ही अच्छी औरत थी वह!

और ओल्या चाची? वह तो बस लगता था कि मक्खियों के लिए ही जीती हैं। रोज़ाना सुबह वह ख़ुद सारी खिड़कियां खोलती थीं, ताकि मक्खियां आसानी से उड़ सकें। और जब बारिश होती या ठंड पड़ती तो ओल्या चाची खिड़कियां बंद कर देतीं, ताकि मक्खियों के पंख न भीग जायें और उन्हें ठंड न लग जाये। फिर ओल्या चाची ने देखा कि मक्खियों को चीनी और तरह-तरह की बेरियां अच्छी लगती हैं, इसलिए वह रोज़ाना उनका मुरब्बा बनाने लगीं। मक्खियों ने तो फ़ौरन भांप लिया कि यह सब किसलिए किया जा रहा है और वे अपना आभार दिखाने के लिए सीधे मुरब्बे के तश्त पर ही जा बैठतीं। अल्योनुश्का को मुरब्बा बहुत अच्छा लगता था, लेकिन ओल्या चाची उसे सिर्फ़ एक या दो चम्मच देती थीं, ताकि मक्खियों के लिए थोड़ा न पड़े।

मक्खियां एक ही बार में तो सारा मुरब्बा खा नहीं सकती थीं, इसलिए ओल्या चाची उसे कांच के मर्तबानों में डाल देती थीं (ताकि चूहे न खा जाएं, उन्हें तो मुरब्बा बिल्कुल नहीं मिलना चाहिए) और फिर हर रोज़ जब चाय पीतीं तो मक्खियों के लिए मुरब्बा निकालतीं।

"ओह, कितने अच्छे, कितने दयालु हैं सब लोग!" मक्खी एक खिड़की से दूसरी खिड़की में जाती हुई ख़ुश होती। "शायद यह अच्छा ही है कि लोगों को उड़ना नहीं आता। नहीं तो वे सब मक्खियां बन जाते—बड़ी-बड़ी, पेटू मक्खियां, और शायद ख़ुद ही सब कुछ खा जाते। वाह, कितना अच्छा है इस दुनिया में रहना!"

"लोग ऐसे भले-वले नहीं हैं, जैसा तू सोचती है," एक बूढ़ी मक्खी ने कहा। वह हमेशा बड़बड़ाती रहती थी। "यह तो बस ऐसे ही लगता है तुझे। तूने उस आदमी को देखा है न, जिसे सब 'पापा' कहते हैं?"

"अरे हां... वह बहुत अजीब आदमी है। आपने बिल्कुल ठीक कहा, अच्छी दादी मक्खी। पता नहीं क्यों वह हमेशा पाइप पीता रहता है, हालांकि ख़ूब जानता है कि मुझे तंबाकू का धुआं क़तई पसंद नहीं। वह जानबूझकर मुझे चिढ़ाने के लिए यह करता है। और

फिर वह मक्खियों के लिए कुछ भी तो नहीं करना चाहता है। एक दिन मैंने वह स्याही चख कर देखी, जिससे वह हमेशा कुछ न कुछ लिखता रहता है, और बस जान जाते-जाते बची। यह तो हद से ज़्यादा है! मैंने अपनी आंखों से देखा था कैसे दो इतनी अच्छी, लेकिन नासमझ मक्खियां उसकी स्याही की दवात में डूब गयीं। कितना भयानक दृश्य था यह – उसने अपनी क़लम से एक मक्खी निकाल ली और काग़ज़ पर इतना बड़ा धब्बा बना दिया। ज़रा सोचो तो इसका दोष उसने अपने आपको नहीं दिया, उलटे हमारे ही सिर मढ़ा! यह भी कोई न्याय है?"

"मेरे ख़्याल में यह पापा तो न्याय की बात ही नहीं जानता, वैसे उसमें एक गुण ज़रूर है," बूढ़ी, अनुभवी मक्खी ने जवाब दिया। "वह दोपहर का खाना खाकर बीयर पीता है। यह बिल्कुल बुरी आदत नहीं है! सच पूछो तो बीयर पीने से मैं भी नहीं हिचकती, हालांकि इसके बाद मेरा सिर चकराता है। क्या किया जाये, बुरी लत है!"

"मुझे भी बीयर अच्छी लगती है," जवान मक्खी ने कहा और थोड़ी लजा भी गयी। "बीयर पीकर मुझ पर तो बस मस्ती छा जाती है, पर हां, अगले दिन सिर में दर्द रहता है। लेकिन यह पापा शायद इसलिए मक्खियों के लिए कुछ नहीं करता कि उसे मुरब्बा अच्छा नहीं लगता और चीनी की डली वह सीधे चाय के गिलास में डाल लेता है। मेरे ख़्याल में तो जिस आदमी को मुरब्बा अच्छा नहीं लगता, वह कोई अच्छा काम नहीं कर सकता। वह तो बस अपना पाइप ही पियेगा।"

मक्खियां सभी लोगों को ख़ूब अच्छी तरह से जानती थीं। हां, यह सच है कि वे उन्हें अपने ही ढंग से समझती थीं।

(२)

ख़ूब ज़ोरों की गर्मी पड़ रही थी। मक्खियां दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थीं। वे दूध में जा गिरतीं, सूप में डुबकी लगातीं, या फिर स्याही की दवात में, भिनभिनातीं, चारों ओर उड़ती रहतीं और हर चीज़ पर बैठ जातीं। नन्ही मक्खी अब तक पूरी बड़ी मक्खी हो

गयी थी। कई बार वह मरते-मरते बची। एक बार मुरब्बे के साथ ऐसी चिपक गयी कि बड़ी मुश्किल से ही उड़ पायी; दूसरी बार वह उनींदी-सी जलते लैम्प पर बैठ गयी और उसके पंख जलते-जलते बचे; तीसरी बार वह खिड़की के पाटों के बीच आते-आते बची, ऐसी बहुत-सी बातें हुईं।

"अरे बाप रे, इन मक्खियों ने तो जीना हराम कर रखा है!" बावरचिन शिकायत करती। "पागलों-सी हर चीज़ पर टूटती हैं। इन्हें मारना चाहिए।"

हमारी मक्खी भी महसूस करने लगी थी कि मक्खियां बहुत बढ़ गयी हैं, ख़ास तौर पर रसोई में। शाम को छत पर मानो चलती-फिरती ज़िंदा जाली बिछ जाती। और जब बाज़ार से खाने का सामान आता, तो झुंड का झुंड उस पर टूट पड़ता। मक्खियां एक दूसरे को धकेलतीं और बुरी तरह से झगड़तीं। सबसे अच्छे टुकड़े सबसे तेज़ और ताक़तवर मक्खियों को मिलते और बाक़ी सब के हिस्से तो जूठन ही आती। बावरचिन पाशा की बात ठीक ही थी।

तभी एक बहुत भयानक बात हुई। एक दिन सुबह पाशा खाने-पीने के सामान के साथ बाज़ार से बड़े ज़ायकेदार काग़ज़ लाई। पहले तो काग़ज़ मामूली से ही थे, लेकिन जब उन्हें तश्तरियों में रखकर उनके ऊपर बारीक चीनी और गुनगुना पानी डाला गया, तो वे बहुत ही मज़ेदार हो गये।

"क्या बढ़िया पकवान है मक्खियों के लिए!" तश्तरियां अच्छी-अच्छी जगहों पर रखते हुए बावरचिन पाशा कह रही थी।

मक्खियां तो पाशा के कहे बिना ही समझ गयी थीं कि यह सब उनके लिए हो रहा है और झुंड की झुंड नए पकवान पर टूट पड़ीं। हमारी मक्खी भी एक तश्तरी की ओर लपकी, लेकिन किसी ने बड़ी रुखाई से उसे एक ओर को धकेल दिया।

"धकियाती क्यों हो जी?" वह नाराज़ हो गयी। "वैसे मैं कोई लालची तो हूं नहीं, जो दूसरों का हिस्सा छीनूं। यह तो उजड्डपन है।"

इसके बाद जो हुआ उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। सबसे लालची मक्खियों को ही सबसे पहले नतीजा भुगतना पड़ा। पहले तो वे नशे में डूबी-सी डगमगाती रहीं, फिर बिल्कुल गिर पड़ीं। पाशा ने झाड़ू दी तो मरी हुई मक्खियों से पूरी बड़ी प्लेट भर गयी। बस, सबसे अधिक अक़्लमंद मक्खियां बची रह गयीं। उनमें हमारी मक्खी भी थी।

"हमें काग़ज़ नहीं चाहिए," वे सब चिल्ला रही थीं। "नहीं चाहिए..."

लेकिन अगले दिन फिर वही बात हुई। अक़्लमंद मक्खियों में से सबसे अधिक अक़्लमंद

ही बची रह गयीं। लेकिन पाशा को लग रहा था कि ये सबसे अधिक अक़्लमद मक्खियां भी बहुत ज्यादा हैं।

"इनकी वजह से जीना हराम है," वह शिकायत करती।

तब वह आदमी, जिसे पापा कहते थे, कांच की तीन सुंदर-सुंदर शीशियां लाया, उनमें बीयर डाली और तश्तरियों पर रख दीं। यहां सबसे अक़्लमंद मक्खियां भी फंस गयीं। ये शीशियां नहीं, मक्खियां फांसने के पिंजरे थे। बीयर की गंध पर मक्खियां वहां उड़ आतीं, शीशी में घुस जातीं, जहां उन्हें बाहर निकलने का रास्ता न मिलता और वे मर जातीं।

"अब बहुत अच्छा है!" पाशा ख़ुश थी। वह बड़ी निर्दयी औरत निकली, दूसरों की मुसीबत पर ख़ुश होती थी।

बताइये तो इसमें भला अच्छी बात क्या है? अगर लोगों के भी मक्खियों जैसे पंख होते और उनके लिए भी घरों जितने बड़े-बड़े पिंजरे लगा दिये जाते, तो वे सब भी ऐसे ही फंस जाते। हमारी मक्खी ने सबसे अक़्लमंद मक्खियों के अनुभव से अच्छा सबक़ सीख लिया था और अब वह लोगों पर ज़रा भी विश्वास नहीं करती थी। ये लोग तो बस देखने में ही भले लगते हैं, पर असलियत में सारी उम्र बेचारी मक्खियों को धोखा देते रहते हैं, जो इन पर भरोसा करती हैं। सच पूछो तो इन्सान ही सबसे चालाक और दुष्ट जीव है!

इन सब झंझटों से मक्खियां बहुत कम हो गयीं और तभी एक और नयी मुसीबत आ खड़ी हुई। गर्मियां बीत गयीं, बारिशें शुरू हो गईं, ठंडी हवाएं चलने लगीं और मौसम बहुत ख़राब हो गया।

"क्या सचमुच गर्मी बीत गयी?" ज़िंदा रह गयी मक्खियां हैरान होतीं। "कब बीत गयी गर्मी? कैसे? यह तो निरा अन्याय है। हमें पता भी नहीं चला और पतझड़ आ धमकी।"

यह पतझड़ ज़हरीले काग़ज़ों और शीशियों से भी बुरी थी। इस ख़राब मौसम से केवल अपने सबसे दुष्ट शत्रु अर्थात् इन्सान के पास ही बचा जा सकता था। अब खिड़कियां भी सारा-सारा दिन बंद रहती थीं, बस कभी-कभी खिड़कियों के ऊपरी कोने में लगे शीशे खोले जाते थे। सूरज भी भोली-भाली मक्खियों को धोखा देने के लिए ही चमकता था। अब आप ही बताइये, यह भी कोई बात हुई—सुबह-सुबह सभी खिड़कियों में से सुनहली धूप कमरों में आती, मानो मक्खियों को बाहर बाग़ में बुला रही हो। ऐसा भ्रम हो सकता था कि गर्मी लौट रही है। बस, भोली-भाली मक्खियां खिड़कियों के ऊपरी खुले शीशों में से बाहर उड़ जातीं, लेकिन धूप में तो बस चमक ही होती, गर्मी नहीं। मक्खियां वापस लौटना चाहतीं,

लेकिन शीशे बंद। ब़स, इसी तरह अपने भोलेपन के कारण कितनी ही मक्खियां पतझड़ की ठंडी रातों में मर गईं।

"नहीं, मैं भरोसा नहीं करती," हमारी मक्खी कहती। "किसी पर भी भरोसा नहीं करती। अगर सूरज भी धोखा देने लगा है, तो फिर भला किसका विश्वास किया जा सकता है?"

कहना न होगा कि पतझड़ के आने पर सभी मक्खियों का मूड ख़राब हो गया था। उनका मिज़ाज फ़ौरन बिगड़ गया। पहले की ख़ुशियों का तो कहीं नामोनिशान ही नहीं रहा था। सब चिड़चिड़ी और सुस्त हो गयीं। और तो और कई मक्खियां काटने तक लगीं, हालांकि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था।

हमारी मक्खी का मिज़ाज तो इतना बिगड़ गया कि वह ख़ुद अपने आपको नहीं पहचान पाती थी। पहले, जब दूसरी मक्खियां मरतीं, तो उसे उन पर तरस आता था, पर अब वह केवल अपने बारे में ही सोचती थी। उसे अपने मन की बात कहते हुए भी शर्म आती थी:

"मरने दो सबको – मेरे लिए ज़्यादा रह जायेगा।"

पहली बात तो यह कि अच्छे गरम कोने, जहां अच्छी, ढंग की मक्खी सारा जाड़ा काट सकती है, कोई ख़ास ज़्यादा नहीं थे। दूसरे, वह बाक़ी मक्खियों से तंग आ गयी थी, जो हर जगह घुसी चली आती थीं, पंजो में से सबसे अच्छे टुकड़े छीन ले जाती थीं और बड़ी बेहयाई से पेश आती थीं। आख़िर उनसे चैन भी मिलना चाहिए।

ये दूसरी मक्खियां मानो हमारी मक्खी के बुरे विचार समझती थीं और सैंकड़ों की तादाद में मर रही थीं। वास्तव में मरती भी नहीं, बस सो-सी जाती थीं। दिन पर दिन मक्खियां कम ही कम होती जा रही थीं, इसलिए न ज़हरीले काग़ज़ों की ज़रूरत रही थी और न मक्खियां फांसने के पिंजरों की। लेकिन हमारी मक्खी के लिए यह भी कम था: वह बिल्कुल अकेली रह जाना चाहती थी। ज़रा सोचो तो – पांच कमरे और उनमें उड़ती हुई वही अकेली मक्खी – कितनी शानदार बात है!

(३)

आख़िर ख़ुशक़िस्मती का ऐसा दिन भी आ गया। एक दिन हमारी मक्खी काफ़ी देर से उठी। कई दिनों से उसे जाने कैसी थकावट सी महसूस हो रही थी और वह अंगीठी के नीचे

अपने कोने में हिले-डुले बिना बैठी रहना ही ज्यादा पसंद करती थी। पर अब उसे लगा कि कोई अद्भुत बात हुई है। वह उड़कर खिड़की तक गयी और फ़ौरन सब बात समझ गयी—पहला हिमपात हुआ था। ज़मीन ने सफ़ेद चमकती चादर ओढ़ ली थी।

"तो ऐसा होता है जाड़ा!" वह फ़ौरन भांप गयी। "बिल्कुल सफ़ेद है यह, दूध की तरह।"

बाद में मक्खी ने देखा कि और सब मक्खियां तो पूरी तरह से ग़ायब हो गयी हैं। वे बेचारियां जाड़े की पहली ठंड नहीं सह सकीं और जो जहां थी, वहीं सो गयी। और कोई वक़्त होता, तो मक्खी को उन पर तरस आता, पर अब उसने सोचा:

"यह तो बहुत अच्छा हुआ! अब मैं बिल्कुल अकेली हूं! न कोई मेरा मुरब्बा खायेगा, न मेरी चीनी और न ही रोटी के मेरे टुकड़े। वाह, कितना अच्छा है!"

उसने सभी कमरों का चक्कर लगाया और एक बार फिर यह देख लिया कि वह बिल्कुल अकेली है। अब उसके मन में जो आये, वह वही कर सकती थी। कितना अच्छा है कि कमरों में इतनी गर्मी है! जाड़ा वहां बाहर था और यहां कमरों में गर्मी थी, बड़ा आराम था, ख़ास तौर पर शाम को तो बहुत ही अच्छा लगता जब लैंप और मोमबत्तियां जलायी जातीं। वैसे पहली बार जब लैंप जलाया गया तो एक छोटी-सी दुर्घटना हुई—मक्खी फिर बत्ती पर जलते-जलते बची।

"यह शायद जाड़ों में मक्खियां पकड़ने की चीज़ है," अपने जले पैरों को रगड़ते हुए उसने अनुमान लगाया। "नहीं, मुझे धोखा नहीं दे पाओगे। मैं सब कुछ ख़ूब समझती हूं! तुम आख़िरी मक्खी को जला डालना चाहते हो? पर मैं क़तई ऐसा नहीं चाहती। रसोई में वह अंगीठी भी मक्खियों को पकड़ने के लिए है, तुम सोचते हो कि मैं यह समझती नहीं?"

आख़िरी मक्खी बस कुछ दिन ही ख़ुश रही और फिर अचानक वह ऊबने लगी, इतनी बुरी तरह से कि बस पूछो मत। हां, बेशक वह गर्माहट में रह रही थी, पेट भी भरा हुआ था, पर फिर भी उसका जी उकताने लगता। वह इधर-उधर उड़ती, आराम करती, कुछ खाती, फिर उड़ती और फिर उसे पहले से भी ज़्यादा ऊब महसूस होने लगती।

"ओफ़ मैं कितनी ऊब गई!" एक कमरे से दूसरे कमरे में उड़ती हुई वह अपनी बारीक-सी आवाज़ में बड़े दुख के साथ चीखती। "हाय, बस एक मक्खी और होती, चाहे कितनी ही चिड़चिड़ी, पर होती तो।"

आख़िरी मक्खी हर दम अपने अकेलेपन का रोना रोती रहती, पर कोई उसकी बात नहीं समझना चाहता था। इस पर उसे और भी ज्यादा ग़ुस्सा आता और वह पागल-सी लोगों के पीछे पड़ जाती – किसी की नाक पर बैठती, किसी के कान पर और कभी आंखों के सामने आगे-पीछे मंडराने लगती। बस बिल्कुल पगला गयी थी।

"हे भगवान, तुम समझते क्यों नहीं कि मैं बिल्कुल अकेली हूं और मुझे बहुत ऊब महसूस हो रही है?" वह हर एक के सामने रोती। "तुम्हें तो उड़ना भी नहीं आता, इसीलिए तुम नहीं जानते कि ऊब क्या चीज़ होती है। कोई थोड़ी देर खेल ही ले मेरे साथ! पर नहीं, भला तुम क्यों खेलोगे? आदमी से बढ़कर बेढब और सुस्त और कौन हो सकता है? जितने जानवर मैंने देखे हैं, उनमें सबसे बेढंगा है यह।"

कुत्ता और बिल्ली तक भी आख़िरी मक्खी से तंग आ चुके थे। सबसे ज़्यादा निराशा तो उसे तब हुई, जब ओल्या चाची ने कहा:

"अरे, यह आख़िरी मक्खी है, इसे मत छेड़ो। जीने दो इसे जाड़े भर।"

यह क्या बात हुई? यह तो सीधे-सीधे उसका अपमान है। उसे अब मक्खी ही नहीं समझते। "'जीने दो' – वाह, क्या अहसान किया है! पर अगर मैं ऊब गई हूं, तो? अगर मैं ज़िंदा रहना ही नहीं चाहती, तो? बस नहीं जीना चाहती मैं, बात ख़त्म।"

आख़िरी मक्खी को सब पर इतना ग़ुस्सा आया कि वह ख़ुद ही डर गयी। वह इधर-उधर उड़ने, भिनभिनाने, चिल्लाने लगी। आख़िर कोने में बैठी मकड़ी को इस पर तरस आ गया। वह बोली:

"प्यारी मक्खी, आ जा मेरे पास। देख, मेरा जाला कितना सुंदर है!"

"बहुत-बहुत शुक्रिया। बड़ी आई है सहेली! जानती हूं मैं तेरे इस सुंदर जाले को। शायद तू कभी इंसान थी और अब मकड़ी का वेश बनाये बैठी है।"

"जैसी तेरी मर्ज़ी। मैं तो तेरे भले के लिए ही कह रही थी।"

"ओह कैसी कमबख़्त है तू! आख़िरी मक्खी को हड़पना चाहती है – यही है न तेरी भलाई?"

वे ख़ूब झगड़ीं, पर फिर भी मक्खी ऊब रही थी। इतनी बुरी तरह से कि बस पूछो मत। मक्खी को सब पर बहुत ग़ुस्सा आया, वह थक गयी और ज़ोर से बोली:

"अच्छा, यह बात है, अगर तुम यह नहीं समझना चाहते कि मैं ऊब रही हूं, तो मैं

सारे जाड़े भर कोने में बैठी रहूंगी! बस, यही है मेरा फ़ैसला! बैठी रहूंगी कोने में और किसी हालत में नहीं निकलूंगी वहां से।"

बीती गर्मियों की ख़ुशियां याद करके वह दुख के मारे रो भी दी। कितनी सारी मक्खियां थीं! और वह बिल्कुल अकेली रह जाना चाहती थी। नहीं, यह उसकी भयंकर भूल थी।

जाड़ा ख़त्म होने में ही नहीं आ रहा था और आख़िरी मक्खी सोचने लगी कि अब गर्मियां कभी नहीं आयेंगी। वह मर जाना चाहती थी और चुपके-चुपके रोती रहती थी। शायद जाड़ा भी इन लोगों के दिमाग़ की ही उपज है, क्योंकि यही वे सब बातें सोचते हैं, जो मक्खियों के लिए नुक़सानदेह हैं। या हो सकता है ओल्या चाची ने गर्मी छिपा दी हो, जैसे वह चीनी और मुरब्बा छिपाती हैं?

आख़िरी मक्खी निराशा से बिल्कुल मर ही जाना चाहती थी कि एक बड़ी अद्भुत बात हुई। वह हमेशा की तरह कोने में बैठी झुंझला रही थी कि अचानक उसने किसी मक्खी को भिनभिनाते सुना। पहले तो उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा शायद कोई उसे धोखा दे रहा है। पर फिर... हे भगवान, यह क्या था! उसके पास से सचमुच की एक बिल्कुल छोटी-सी मक्खी उड़ती हुई निकली। वह अभी-अभी पैदा हुई थी और ख़ुश हो रही थी।

"वसंत आ गया! वसंत!" वह भिनभिना रही थी।

कितनी ख़ुश हुई थीं वे एक दूसरी को देख कर! गले मिलीं, एक दूसरे को चूमने-चाटने लगीं। कई दिनों तक बूढ़ी मक्खी यह बताती रही कि कितनी मुश्किल से उसने जाड़ा काटा, कि वह कितनी बुरी तरह से ऊब गयी थी। नन्ही मक्खी अपनी पतली आवाज़ में हंसती रहती और समझ न पाती कि ऊब कैसी होती है।

"वसंत! वसंत!" वह भिनभिनाती रहती।

जब ओल्या चाची ने जाड़ों के लिए खिड़कियों पर लगे दोहरे सांचे उतरवाये और जब अल्योनुश्का ने पहली बार खुली खिड़की से बाहर झांक कर देखा, तो आख़िरी मक्खी फ़ौरन सब कुछ समझ गयी।

"अब मैं सब कुछ जानती हूं," खिड़की से बाहर उड़ते हुए वह भिनभिनायी, "हम मक्खियां ही गर्मियां लाती हैं।"

काला कौवा और पीली कनारी

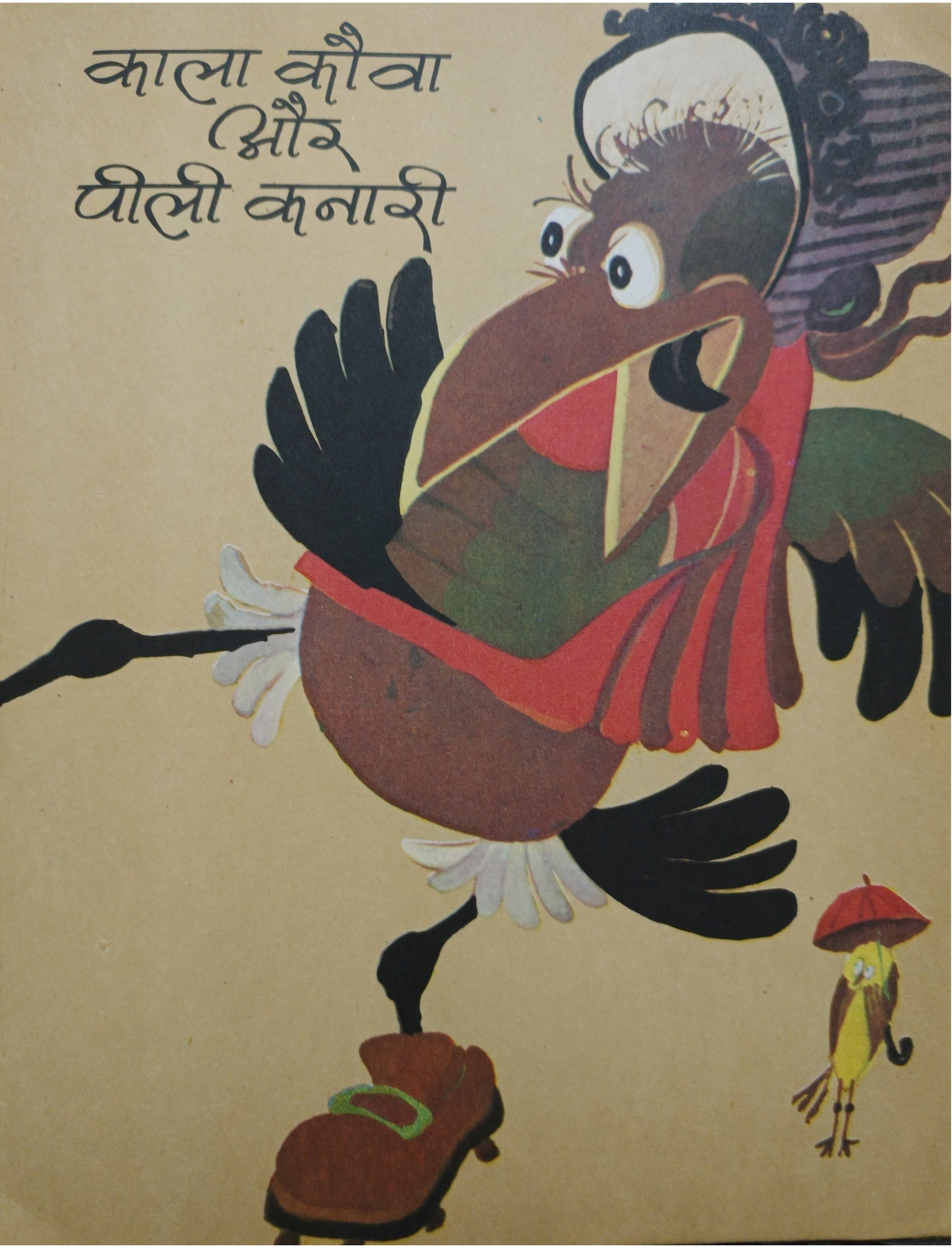

यह हुआ न गाना !

भोज-वृक्ष पर बैठा कौआ टहनी पर चोंच मार रहा था : ठक-ठक। चोंच साफ़ करके कौए ने चारों ओर नजर दौड़ायी और चिल्लाया :

"कांव-कांव!"

बाड़ पर आराम से ऊंघता हुआ वास्का बिल्ला डर के मारे गिरते-गिरते बचा। वह बड़बड़ाया :

"क्या आफ़त आ गई तुझे कलसिरे! ख़ूब आवाज़ दी है तुझे भगवान ने! किस ख़ुशी में चिल्ला रहा है?"

"जा, पीछा छोड़। देख नहीं रहा, मुझे फ़ुरसत नहीं है? ओह, ज़रा भी नहीं। कांव-कांव-कांव! कितने काम हैं!"

"थक गया, बेचारा," वास्का हंस पड़ा।

"चुप रह, आलसी। तुझे काम ही क्या है? पड़ा-पड़ा धूप सेंकता रहता है और मुझे सुबह से चैन नहीं : दस छतों पर बैठ आया, आधे शहर का चक्कर काट लिया, सारी गलियों का कोना-कोना देख आया हूं। अभी घंटाघर पर जाना है, बाज़ार का चक्कर लगाना है, बगीचे में भी खुदाई करनी है। अरे, क्यों मैं तेरे साथ वक़्त ज़ाया कर रहा हूं, मुझे फ़ुरसत नहीं। ओह, ज़रा भी नहीं!"

कौए ने आख़िरी बार डाली पर चोंच मारी, पंख फड़फड़ाये और बस उड़ना ही चाहता था कि इतने में बड़े ज़ोर की चीख सुनाई दी। गौरैयों का एक झुंड उड़ा आ रहा था और उनके आगे-आगे थी एक छोटी-सी पीली चिड़िया।

"पकड़ो, पकड़ो इसे... अरे पकड़ो!" गौरैयां चीख़ रही थीं।

"क्या हुआ? किधर चलीं?" गौरैयों के पीछे लपकते हुए कौआ चिल्लाया।

कौए ने दसेक बार पंख फड़फड़ाये और गौरैयों तक पहुंच गया। पीली चिड़िया थककर बेदम हो गयी थी। वह एक छोटे-से बाग़ की ओर लपकी, जहां बर्ड-चेरी, बकायन और झरबेरी की झाड़ियां उगी हुई थीं। पीली चिड़िया पीछा कर रही गौरैयों से बचने के लिये छिप जाना चाहती थी। वह एक झाड़ी के नीचे दुबक गई। इतने में कौआ भी वहां आ पहुंचा।

"कौन है तू?" कौआ अपने कर्कश स्वर में चिल्लाया।

गौरैयां झाड़ी के चारों ओर बिखर गयीं, मानो किसी ने वहां दाना डाला हो।

वे पीली चिड़िया से सख़्त नाराज़ थीं और चोंच मार-मारकर उसकी जान ले लेना चाहती थीं।

"क्यों तुम इसके पीछे पड़ी हो?" कौए ने पूछा।

"यह पीली क्यों है?" सारी गौरैयां एक साथ चीख़ उठीं।

कौए ने पीली चिड़िया की ओर देखा: वह सचमुच सारी की सारी पीली थी। फिर कौए ने सिर हिलाया और बोला:

"ओह, शैतान की नानियो! यह तो चिड़िया है ही नहीं! कहीं चिड़ियां भी ऐसी होती हैं? चलो, भागो यहां से तुम सब। मुझे इस अजूबे से बात करनी है। यह तो बस चिड़िया होने का बहाना कर रही है।"

गौरैयां चिचियाने, चीख़ने-चिल्लाने लगीं, उनका ग़ुस्सा और भी बढ़ गया, पर वे कुछ कर नहीं सकती थीं – जाना ही होगा। कौआ तो ज़्यादा बात नहीं करता – ऐसी चोंच मारता है कि बस, दम ख़ुश्क हो जाता है।

गौरैयों को भगाकर कौआ पीली चिड़िया से पूछ-ताछ करने लगा। उस बेचारी की सांस फूली हुई थी और वह अपनी काली-काली उदास आंखों से कौए को देख रही थी।

"कौन है तू?" कौए ने पूछा।

"मैं कनारी चिड़िया हूं।"

"देख, मुझे धोखा नहीं देना, नहीं तो बुरा होगा। अगर मैं न होता, तो गौरैयां तुझे मार डालतीं।"

"मैं सचमुच कनारी हूं।"

"तू आई कहां से?"

"मैं पिंजरे में रहती थी। पिंजरे में ही जन्मी और बड़ी हुई और रहती रही। मैं हमेशा दूसरी चिड़ियों की तरह उड़ना चाहती थी। पिंजरा खिड़की पर रखा हुआ था और मैं हमेशा दूसरी चिड़ियों को देखती रहती थी। कितने मज़े थे उनके और मैं छोटे-से पिंजरे में बन्द थी। एक दिन अल्योनुश्का कटोरी में पानी लाई, उसने पिंजरे का दरवाज़ा खोला और मैं बाहर निकल गई। पहले कमरे में उड़ती रही और फिर खिड़की में से बाहर उड़ गई।"

"तू पिंजरे में करती क्या थी?"

"मैं अच्छा गाती हूं।"

"ज़रा गा तो।"

कनारी चिड़िया गाने लगी। कौए ने अपना काला सिर एक ओर को झुका लिया और हैरान होने लगा।

"यह भी कोई गाना है? हा-हा... कैसे मूर्ख थे तेरे मालिक, जो ऐसे गाने के लिए तुझे दाना-पानी देते थे। अगर दाना-पानी देना ही हो, तो मुझ जैसे किसी असली परिन्दे को देना चाहिए। अभी थोड़ी देर पहले मैंने कांव-कांव की, तो वह बदमाश वास्का बिल्ला बाड़ से गिरते-गिरते बचा। यह हुआ न गाना!"

"मैं वास्का को जानती हूं। वह सबसे डरावना जानवर है। कई बार वह मेरे पिंजरे के पास आ जाता था। उसकी हरी-हरी आंखें जैसे जलती हैं, तेज़ नाख़ून आगे को बढ़ा लेता है।"

"ख़ैर, किसी के लिए डरावना है और किसी के लिए नहीं। यह सच है कि बदमाश तो वह बहुत है, पर डरने की कोई बात नहीं। अच्छा, ये बातें बाद में होंगी। पर मुझे अभी भी विश्वास नहीं होता कि तू सचमुच की चिड़िया है।"

"नहीं, कौए चाचा, मैं सचमुच ही चिड़िया हूं। सभी कनारियां चिड़ियां होती हैं।"

"ठीक है, ठीक है, देखा जायेगा। पर अब तू जियेगी कैसे?"

"मेरी तो बहुत थोड़ी-सी ज़रूरत है: कुछ दाने, एक टुकड़ा चीनी का, एक बिस्कुट और बस, इतने में मेरा पेट भर जाता है।"

"वाह री, नवाबज़ादी! चीनी के बिना भी जी लेगी और दाने कहीं न कहीं मिल ही जायेंगे। वैसे तू मुझे अच्छी लग रही है। रहेगी मेरे साथ? भोज-वृक्ष पर मेरा बड़ा अच्छा घोंसला है।"

"शुक्रिया। लेकिन ये गौरैयां..."

"अगर मेरे साथ रहेगी, तो तेरी ओर कोई उंगलो भी नहीं उठा सकेगा। गौरैयां तो क्या, बदमाश वास्का भी मेरा स्वभाव जानता है। मेरे घोंसले में अगर कोई आया, तो उसे नानी याद दिला दूंगा।"

कनारी फ़ौरन खिल उठी और कौए के साथ उड़ गई। हां, घोंसला बहुत अच्छा था, बस अगर चीनी और बिस्कुट का एक टुकड़ा भी मिल जाता, तो फिर तो मजा ही आ जाता।

कौआ और कनारी एक घोंसले में रहने लगे। कौआ कभी-कभी बड़बड़ाता रहता था,

पर वैसे वह बुरा पंछी नहीं था। उसकी सबसे बड़ी बुराई यह थी कि वह सबसे जलता था और यह समझता था कि उसकी ओर ठीक ध्यान नहीं दिया जाता।

"बताओ भला, इन भोंदू मुर्गियों में क्या ख़ूबी है? लेकिन इन्हें दाना-पानी दिया जाता है, लोग इनकी देखभाल करते हैं," वह कनारी से शिकायत करता। "अब इन कबूतरों को ही लो। किस काम के हैं ये, फिर भी कोई न कोई इन्हें मुट्ठी भर जई डाल ही देता है। यह भी बुद्धू पक्षी है। और कहीं मैं पहुंच जाऊं, तो फ़ौरन मुझे भगाने लगते हैं। यह भी कोई न्याय है? ऊपर से कोसते भी हैं: "धत्, कौए!" और तूने देखा कि मैं औरों से कहीं ज़्यादा अच्छा हूं और सुंदर भी। मान लिया कि अपने बारे में ऐसी बातें नहीं कही जातीं, पर लोग ख़ुद ही कहलवाते हैं। ठीक कहता हूं न मैं?"

कनारी उसकी सब बातों में हामी भर देती थी:

"हां, तुम बहुत बड़े पक्षी हो।"

"यही तो बात है। तोतों को पिंजरों में रखते हैं, उनकी देखभाल करते हैं, पर तोता मुझसे किस बात में अच्छा है? बस, ऐसे ही भोंदू परिन्दा है। रात-दिन चिल्लाता-बड़बड़ाता रहता है। और किसी की समझ में नहीं आता कि वह क्या बड़बड़ा रहा है। ठीक कहा न मैंने?"

"हां, हमारे यहां भी एक तोता था। सब के नाक में दम किये रखता था।"

"हां, ऐसी चिड़ियां भी कुछ कम नहीं, जिनके जीने में जाने क्या तुक है! इन मैनाओं को ही लो, पागलों-सी जाने कहां से उड़ आती हैं, गर्मियां बिताती हैं और फिर उड़ जाती हैं। अबाबीलें, फुदकियां और बुलबुलें भी – कितनी ही ऐसी बेकार की चिड़ियां हैं। एक भी काम की, गंभीर चिड़िया नहीं है। ज़रा ठंड पड़नी शुरू हुई नहीं कि सब उड़ भागती हैं।"

दरअसल कौआ और कनारी एक दूसरे की बातें नहीं समझते थे। कनारी इस आज़ाद ज़िंदगी को नहीं समझती थी और कौआ पिंजरे की ज़िंदगी को नहीं समझ सकता था।

"कौआ चाचा, क्या तुम्हें कभी किसी ने दाना नहीं चुगाया?" कनारी हैरान होती। "एक दाना भी नहीं?"

"कैसी बुद्धू है तू! कैसे दाने? यहां तो यही ख़्याल रखना पड़ता है कि कोई टहनी या पत्थर न मार दे। ये लोग बहुत दुष्ट हैं।"

यह आख़िरी बात कनारी नहीं मान सकती थी, क्योंकि लोगों ने उसे खिलाया-पिलाया

था। शायद कौए को ऐसे ही लगता हो। पर शीघ्र ही कनारी ने ख़ुद लोगों की दुष्टता देख ली। एक दिन वह बाड़ पर बैठी थी कि सहसा एक भारी पत्थर ऐन उसके सिर के ऊपर से सनसनाता हुआ गुज़रा। स्कूल से लौटते लड़के गली में से जा रहे थे, उन्होंने बाड़ पर कौए को देखा, फिर भला पत्थर कैसे न फेंकते?

"क्यों, देख लिया न?" छत पर पहुंचकर कौए ने पूछा। "ये लोग सब ऐसे ही हैं।"

"शायद आपने उन्हें नाराज़ किया हो, चाचा?"

"बिल्कुल नहीं। ऐसे ही ख़ार खाते हैं। ये सब मुझसे घृणा करते हैं।"

कनारी को कौए पर बड़ा तरस आया, जिसे कोई भी प्यार नहीं करता। ऐसे तो जिया भी नहीं जा सकता।

दुश्मनों की वैसे कोई कमी न थी। वास्का बिल्ले को ही लीजिए। कैसी ललचाई आंखों से वह सब चिड़ियों को देखता रहता था और ख़ुद सोने का बहाना करता था। एक दिन कनारी ने अपनी आंखों से देखा था कि कैसे उसने एक छोटी-सी, भोली-भाली गौरैया को पकड़ लिया था, बस हड्डियां चरमरायीं और रोएं उड़े। ओफ़, कितना डरावना दृश्य था! और ये बाज़ भी कुछ कम भयानक नहीं–हवा में तैरते-से रहते हैं, तैरते रहते हैं और फिर पत्थर की तरह किसी असावधान चिड़िया पर टूट पड़ते हैं। कनारी ने बाज़ को चूज़ा उठा ले जाते भी देखा था। वैसे कौआ न बिल्ले से डरता था और न बाज़ों से, बल्कि वह ख़ुद भी किसी छोटी-मोटी चिड़िया को हड़पने से परहेज़ नहीं करता था। पहले तो कनारी को इस बात पर विश्वास नहीं होता था, पर एक दिन उसने अपनी आंखों से देख लिया। गौरैयों का झुंड का झुंड कौए के पीछे उड़ता आ रहा था। वे चिचिया और चीख़-चिल्ला रही थीं। कनारी बहुत डरी और घोंसले में छिप गयी।

"लौटा दे, लौटा दे!" गौरैयां कौए के घोंसले के ऊपर उड़ती हुई ग़ुस्से में चिल्ला रही थीं। "यह क्या किया तूने? यह तो निरी लूट है!"

कौआ अपने घोंसले में घुस गया और कनारी तो यह देखकर स्तब्ध रह गई कि कौए के पंजे में ख़ून से लथपथ और मरा हुआ चिड़ा है।

"यह तुम क्या कर रहे हो?"

"चुप रह," कौआ गुर्राया।

उसकी आंखें बड़ी डरावनी थीं–अंगारों-सी चमक रही थीं। कनारी ने डर के मारे आंखें भींच लीं, ताकि यह न देख पाये कि कैसे कौआ अभागे चिड़े को नोचेगा।

"किसी दिन यह मुझे भी ऐसे ही खा जायेगा," कनारी सोच रही थी।

लेकिन कौआ हर बार कुछ खा चुकने पर दयालु हो जाता। चोंच साफ़ करता, किसी डाल पर आराम से बैठ जाता और ऊंघने लगता। कनारी यह देख रही थी कि कौआ बहुत पेटू है और उसे किसी चीज़ से घिन नहीं होती। कभी वह रोटी का टुकड़ा उठा लाता, कभी सड़े गोश्त का टुकड़ा और कभी कूड़े के ढेर में से जूठन निकाल लाता। यह आख़िरी काम कौए को बहुत अच्छा लगता था और कनारी यह बिल्कुल नहीं समझ पाती थी कि कूड़े के ढेर में कुछ टटोलते रहने में कौए को क्या मज़ा आता है। यों तो कौए को कोई दोष भी नहीं दिया जा सकता था: वह एक दिन में इतना खा जाता था, जितना बीस कनारियां भी न खा सकें। उसका तो काम ही था खाना ढूंढ़ना। छत पर कहीं बैठ जाता और खाना ढूंढ़ता रहता।

जब कौए को ख़ुद खाना ढूंढ़ने में आलस आता, तो वह चालाकी से काम लेता। देखता कि कहीं गौरैयां कुछ नोच रही हैं, फ़ौरन उधर लपकता। दिखावा यह करता कि मानो पास से उड़ रहा है और ख़ुद गला फाड़-फाड़कर चिल्लाता जाता:

"ओह, फ़ुरसत नहीं, ज़रा भी फ़ुरसत नहीं!"

पास पहुंचता, माल झपटता और नौ दो ग्यारह हो जाता।

"चाचा, दूसरों की चीज़ छीनना तो अच्छी बात नहीं," एक बार कनारी ने नाराज़गी से कहा।

"अच्छी बात नहीं? लेकिन अगर मुझे हर वक़्त भूख लगी रहे, तो मैं क्या करूं?"

"दूसरों को भी तो भूख लगती है।"

"दूसरे अपना पेट ख़ुद भर लेंगे। तुम्हारी जैसी नवाबज़ादियों को ही पिंजरों में दाना डाला जाता है। हमें तो अपने लिए खाना ख़ुद ढूंढ़ना पड़ता है। और फिर तुझे या गौरैया को चाहिए ही कितना। थोड़ा-सा दाना चुग लिया और सारे दिन के लिए पेट भर गया।"

गर्मियां कैसे बीत गयीं, पता भी नहीं चला। सूरज मानो ठंडा पड़ गया और दिन छोटे हो गये। बारिशें होने लगीं, ठंडी हवा चलने लगी। जब बारिश होती, तो कनारी को लगता कि वह सबसे अभागी चिड़िया है। पर कौए की बला से होती रहे।

"बारिश हो रही है, तो क्या हुआ?" वह हैरान होता। "थोड़ी देर में बंद हो जायेगी।"

"पर मुझे ठंड लगती है, चाचा! ओफ़ कितनी ठंड है!"

रात को सबसे ज्यादा मुसीबत होती। भीगी हुई कनारी ठंड से ठिठुरती और ऊपर से कौआ बिगड़ता:

"वाह, कैसी नाजुक है तू! अभी जब असली जाड़ा आयेगा, बर्फ़ पड़ेगी, तब क्या होगा?"

कौआ बुरा ही मान जाता। भला यह भी कोई चिड़िया है; जो बारिश, हवा, ठंड सबसे डरती है? ऐसे तो दुनिया में जिया ही नहीं जा सकता। उसे फिर से यह शक होने लगा कि यह कनारी चिड़िया है भी कि नहीं। शायद ऐसे ही दिखावा करती है चिड़िया होने का।

"नहीं, चाचा, मैं सचमुच की चिड़िया हूं!" कनारी डबडबायी आंखों से उसे यक़ीन दिलाती। "पर मुझे ठंड लगती है।"

"यही तो बात है! मुझे तो बस यही लगता है कि तू चिड़िया होने का ढोंग कर रही है।"

"नहीं, सच, मैं ढोंग नहीं करती।"

कभी-कभी कनारी सोच में डूब जाती, अपने भाग्य के बारे में सोचती रहती। शायद पिंजरे में ही रहना अच्छा होता। वहां गर्मी भी मिलती और पेट भी भरा रहता। वह कई बार उस खिड़की तक गयी भी, जिसके पीछे उसका पिंजरा रखा हुआ था। उसमें अब दो नई कनारियां बैठी हुई थीं और उन्हें इससे ईर्ष्या होती थी।

"ओफ़, कितनी ठंड है," ठंड से ठिठुरती कनारी दर्दीली आवाज़ में चिचियाती। "मुझे घर में आने दीजिये।"

एक दिन सुबह कनारी ने कौए के घोंसले से बाहर झांककर देखा: चारों ओर सब कुछ सफ़ेद था। रात को पहला हिमपात हुआ था और धरती को किसी ने मानो सफ़ेद चादर से ढक दिया था। कनारी यह उदासी भरा दृश्य देखकर स्तंभित रह गयी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे दाने भी बर्फ़ के नीचे दब गये थे, जो कनारी खाया करती थी। अब बस पेड़ों पर रक्तकोल की लाल-लाल बेरियां रह गई थीं, लेकिन कनारी ये खट्टी बेरियां नहीं खा सकती थी। कौआ डाल पर बैठा बेरियां खाता रहता और ख़ुश होता:

"वाह, क्या बेरियां हैं!"

दो दिन तक भूखी रहकर कनारी बिल्कुल हताश हो गयी। अब आगे क्या होगा? ऐसे तो वह भूख से मर ही जायेगी।

कनारी बेचारी ऐसे ही दुख में डूबी बैठी थी। सहसा उसने उन्हीं लड़कों को बाग़ में भागे आते देखा, जिन्होंने कौए पर पत्थर फेंका था। उन्होंने ज़मीन पर जाल बिछाया, पटसन के बीज फेंके और भाग गये।

"अरे ये लड़के तो ज़रा भी बुरे नहीं," नीचे बिछे जाल को देखकर कनारी ख़ुश हो उठी। "चाचा, लड़के मेरे लिए दाना लाये हैं!"

"क्या कहने हैं ऐसे दानों के!" कौआ बड़बड़ाया। "ख़बरदार जो उधर गयी! सुना तूने? जैसे ही दाना चुगने लगेगी, फ़ौरन जाल में फंस जायेगी।"

"फिर क्या होगा?"

"फिर दुबारा तुझे पिंजरे में बंद कर देंगे।"

बेचारी कनारी सोच में पड़ गयी: वह दाना भी चुगना चाहती थी और पिंजरे में बंद भी नहीं होना चाहती थी। बेशक यहां ठंड है, भूखे रहना पड़ता है, तो भी आज़ाद रहना कहीं अच्छा है, ख़ास तौर पर जब बारिश न हो रही हो।

कुछ दिन तक तो कनारी मन कड़ा किये रही, लेकिन भूख पर कब तक ज़ोर चलता। वह दानों के लालच में आ गयी और जाल में फंस गयी।

"मुझे बचाओ!" वह दर्दभरी आवाज़ में चीख़ी। "फिर कभी ऐसा नहीं करूंगी... फिर से पिंजरे में बंद होने से तो अच्छा है भूखी मर जाऊं!"

कनारी को अब लग रहा था कि इस दुनिया में कौए के घोंसले से बेहतर जगह और कहीं नहीं है। बेशक वहां ठंड होती थी और भूखे रहना पड़ता था, पर आज़ादी तो पूरी थी। जिधर जी में आया, उधर ही उड़ गयी। वह रो ही पड़ी। अभी लड़के आ जायेंगे और उसे पिंजरे में बन्द कर देंगे। उसकी ख़ुशक़िस्मती थी कि कौआ उधर से उड़ रहा था। उसने देखा कि कनारी तो मुसीबत में फंस गयी है।

"वाह री, बुद्धू! कहा था न मैंने कि इन दानों को मत छूना," कौआ बड़बड़ाया।

"फिर कभी ऐसा नहीं करूंगी, चाचा!"

कौआ ठीक समय पर आ गया था। लड़के अपना शिकार पकड़ने के लिए भागे आ रहे थे, लेकिन कौए ने बारीक जाल फाड़ डाला और कनारी आज़ाद हो गई। लड़के बड़ी देर तक कमबख़्त कौए के पीछे भागते रहे, वे उस पर डंडियां और पत्थर फेंक रहे थे तथा उसे गालियां दे रहे थे।

"कितना अच्छा हुआ!" कनारी फिर से अपने घोंसले में पहुंच कर ख़ुश हो रही थी।

"हां, अब तो अच्छा हुआ। पर आगे से ख़बरदार रहना," कौआ बड़बड़ा रहा था।

कनारी फिर से कौए के घोंसले में रहने लगी। अब वह ठंड और भूख की शिकायत नहीं करती थी। एक दिन कौआ दाना चुगने कहीं दूर उड़ गया। रात उसने खेत में ही काटी, सुबह जब घर लौटा तो कनारी घोंसले में पैर ऊपर किये पड़ी हुई थी। कौए ने सिर एक ओर को घुमाया, कनारी को देखा और बोला:

"कहा था न मैंने कि यह वास्तव में चिड़िया नहीं है!"

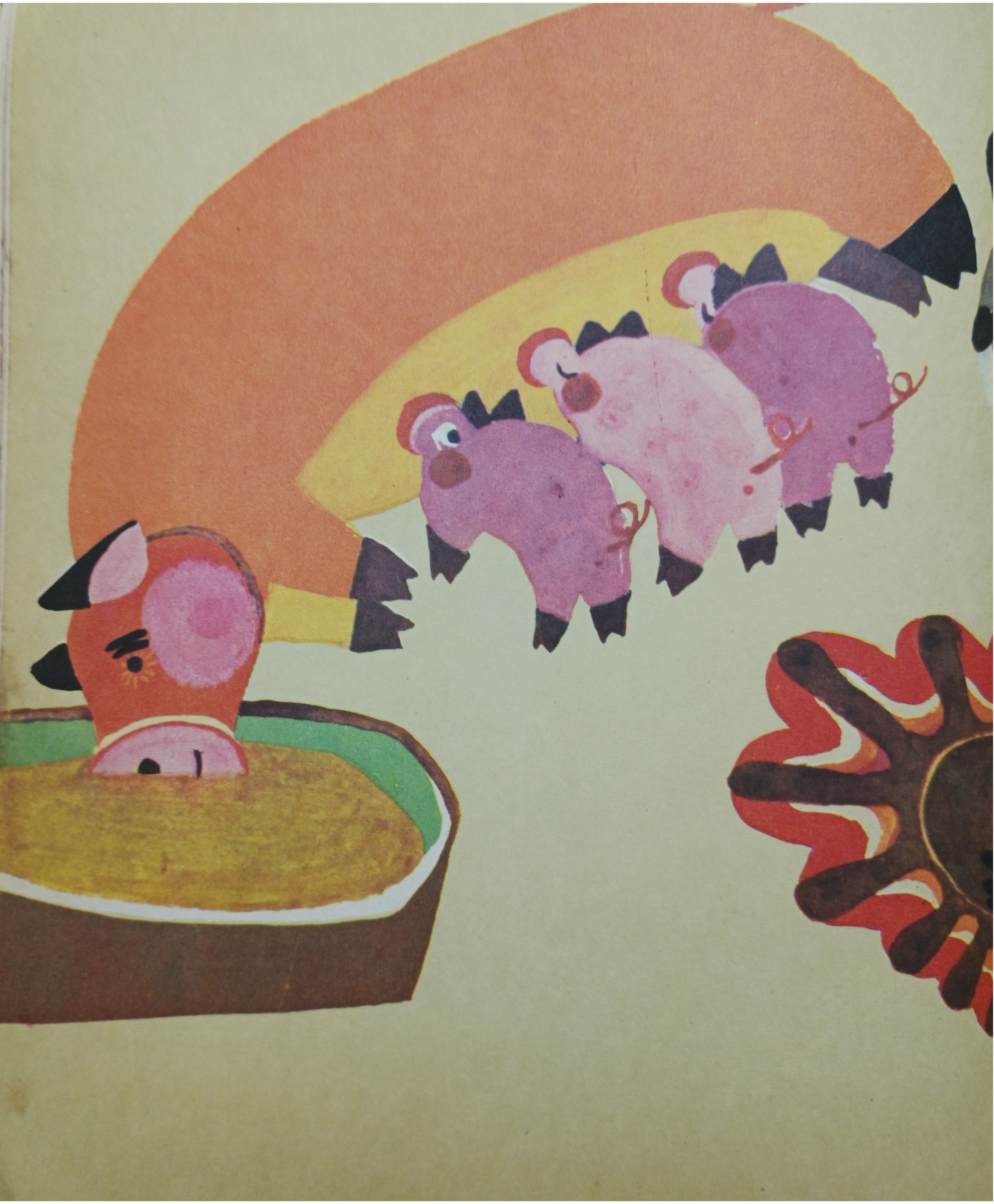

सबसे ज़्यादा अक़्लमन्द

मैं ही तो सबसे ज्यादा अक़्लमंद हूं ?
हूं न ?

(१)

मुंह अंधेरे ही टर्की मुर्ग़ा जाग उठा। उसने अपनी मुर्ग़ी को जगाया और बोला:

"मैं ही तो सबसे ज्यादा अक़्लमंद हूं? हूं न?"

उनींदी-सी टर्की मुर्ग़ी देर तक खांसती रही और फिर उसने जवाब दिया:

"हां, कितने अक़्लमंद हो तुम! खां-खां... कौन नहीं जानता भला? खूं..."

"नहीं जी, तुम साफ़-साफ़ बताओ: सबसे ज्यादा अक़्लमंद हूं न? यों अक़्लमंद तो कई परिन्दे हैं, लेकिन सबसे ज्यादा अक़्लमंद एक ही है, वह मैं हूं।"

"सबसे ज्यादा अक़्लमंद हो! खां-खां! सबसे अक़्लमंद। खां-खां-खां!"

"यह हुई न बात।"

टर्की मुर्ग़े को तो थोड़ा ताव भी आ गया था और वह दूसरे पक्षियों को सुनाता हुआ बोला:

"जानती हो, मुझे लगता है कि मेरी कम इज़्ज़त होती है। हां, बहुत कम।"

"नहीं, तुम्हें यों ही ऐसा लगता है। खां-खां!" टर्की मुर्ग़ी ने उसका ताव ठंडा करने के लिए कहा। वह रात के वक़्त उलझ गये अपने परों को संवार रही थी। "हां, बस ऐसे-ही लगता है। तुमसे ज़्यादा अक़्लमंद परिन्दा तो कोई हो ही नहीं सकता। खां-खां-खां!"

"और वह कलहंस? मैं सब समझता हूं। मान लिया कि वह साफ़-साफ़ कुछ नहीं कहता, अकसर चुप ही रहता है। पर मैं महसूस करता हूं कि वह चुप रहकर मेरी इज़्ज़त नहीं करता।"

"तुम उसकी ओर ध्यान ही मत दो। कोई ज़रूरत नहीं। खां! तुम तो जानते ही हो कि कलहंस कुछ भोंदू-सा है।"

"यह कौन नहीं जानता? उसकी तो सूरत पर ही लिखा हुआ है: भोंदू कलहंस, बस और कुछ नहीं। ख़ैर, कलहंस की कोई बात नहीं, मूर्ख पंछी पर कौन ग़ुस्सा करे? लेकिन यह मुर्ग़ा, बिल्कुल मामूली मुर्ग़ा... अभी परसों वह क्या चिल्ला रहा था मेरे बारे में? और चिल्ला भी तो कैसे रहा था—सारे पड़ोसियों ने सुना। शायद उसने मुझे महामूर्ख ही कहा था... या कुछ ऐसा ही।"

"ओफ़, कैसे अजीब हो तुम!" टर्की मुर्ग़ी हैरान हुई। "जानते नहीं, वह क्यों चिल्लाता रहता है?"

"ज़रा बताओं तो, क्यों?"

"खां-खां-खां। सीधी-सी बात है और सभी जानते हैं। तुम भी मुर्ग़े और वह भी मुर्ग़ा, लेकिन वह बिल्कुल मामूली मुर्ग़ा है, एकदम आम मुर्ग़ा और तुम हो असली टर्की मुर्ग़े, बस इसीलिए वह जलन के मारे चिल्लाता रहता है। सभी पक्षी टर्की मुर्ग़ा बनना चाहते हैं। खां-खां-खां!"

"अरे, वाह! चाहा भी तो क्या! यह कोई आसान बात नहीं। मामूली-सा मुर्ग़ा और बनना चाहता है टर्की! क्या कहने हैं! बन चुका वह टर्की मुर्ग़ा!"

टर्की मुर्ग़ी बहुत ही भली और विनम्र थी। टर्की मुर्ग़ा जब किसी से झगड़ने लगता, तो वह हमेशा दुखी होती थी। आज भी वह जागते ही इस फेर में था कि किससे झगड़े या लड़ ही पड़े। टर्की मुर्ग़ा झगड़ालू होते हुए भी दिल का बुरा नहीं था। दूसरे पक्षी जब उसका मज़ाक़ उड़ाते और कहते कि वह बहुत बनता और बेपर की उड़ाता है, तो टर्की मुर्ग़ी को यह बुरा लगता। मान लिया कि कुछ हद तक उनकी बात सही थी, लेकिन ऐसा भी कोई पक्षी है, जिसमें कोई बुराई न हो? ऐसे पक्षी नहीं होते, बल्कि किसी दूसरे पक्षी में कोई छोटी-सी भी बुराई मिल जाने पर बड़ी ख़ुशी होती है।

सब पक्षी जाग गये और मुर्ग़ीख़ाने में से अहाते में निकल आये। बाहर आते ही उन्होंने आसमान सिर पर उठा लिया। सबसे ज़्यादा शोर मुर्ग़ियां मचा रही थीं। वे अहाते में इधर-उधर भाग रही थीं, रसोई की खिड़की के पास जा-जा कर बड़े ज़ोर से चिल्ला रही थीं

"कुड़-कुड़! कुड़-कुड़-कुड़! हमें भूख लगी है! हो न हो बावरचिन मत्योना मर गयी है और हमें भूखा मारना चाहती है।"

"अरे भई, ज़रा धीरज से काम लो," एक टांग पर खड़े कलहंस ने कहा। "मुझे देखो मुझे भी तो भूख लगी है, पर मैं तुम्हारी तरह चिल्ला नहीं रहा हूं। अगर मैं भी ऐसे गला फाड़ कर चिल्लाने लगूं... गा-गा! या फिर ऐसे: ए-गा-गा-गा!!"

कलहंस ने इतने ज़ोरों से गा-गा की कि बावरचिन मत्योना फ़ौरन जाग गयी।

"भला यह धीरज की बातें क्यों न करेगा," एक बत्तख़ बड़बड़ा रही थी, "देखो तो, कैसी आवाज़ है, एकदम तुरही जैसी। और फिर अगर मेरी गरदन इतनी लंबी होती और चोंच इतनी मज़बूत, तो मैं भी धीरज रखने को कहती। ख़ुद तो सबसे पहले भरपेट खा लेता और दूसरों को कहता धीरज रखो। ख़ूब जानते हैं हम यह कलहंस का धीरज।"

मुर्ग़े ने बत्तख़ की हां में हां मिलायी और चिल्लाया:

"हां, कलहंस तो मजे से धीरज की बातें बना सकता है। पर कल किसने मेरी पूंछ के दो सबसे सुंदर पर उखाड़े थे? यह कोई भलमानसी थोड़े ही है—सीधे पूंछ पकड़ लेना। मान लिया कि हमारे बीच थोड़ी झड़प हो गयी थी और मैं कलहंस के सिर पर चोंच मारना चाहता था, मैं इंकार नहीं करता, सचमुच मेरा ऐसा इरादा था, लेकिन क़सूर तो मेरा था, मेरी पूंछ का नहीं। क्यों जी, ठीक कहा न मैंने?

भूखे लोगों की ही तरह भूखे पक्षी भी केवल इसलिए अन्यायी हो गये थे कि वे भूखे थे।

(२)

टर्की मुर्ग़ा बड़ा गर्वीला था। वह कभी भी दूसरे पक्षियों के साथ दाने पर नहीं टूटता था, बल्कि अलग से खड़ा बड़े सब्र से इंतज़ार करता रहता था कि कब मल्योना किसी दूसरे लालची पक्षी को भगा कर उसे बुलायेगी। अब भी वह अलग से बाड़ के पास घूम रहा था, मानो वहां कूड़े में कुछ ढूंढ़ रहा हो।

"खां-खां। हाय, कितनी भूख लगी है मुझे!" टर्की मुर्ग़ी अपने पति के पीछे-पीछे चलती हुई शिकायत-सी कर रही थी। "लो मल्योना ने जई डाल दी है और लगता है, कल का बचा-खुचा दलिया भी। खां-खां! हाय, कितना अच्छा लगता है मुझे दलिया! मैं तो बस सारी उम्र दलिया ही खाती रहूं। मुझे तो वह कभी-कभी सपने में भी दिखता है।"

टर्की मुर्ग़ी जब भूखी होती, तो किसी न किसी बात की शिकायत करती और यह चाहती कि मुर्ग़ा ज़रूर उस पर तरस खाये। अन्य पक्षियों के मुक़ाबले में वह बिल्कुल बुढ़िया लगती थी: उसका कूबड़ निकला रहता, वह खांसती रहती और ऐसे डोलती-डगमगाती चाल से चलती, मानो उसके कल ही टांगें लगायी गयी हों।

"हां, दलिया मिल जाये, तो अच्छा ही है," टर्की मुर्ग़े ने हामी भरी। "लेकिन अक़्लमंद पक्षी कभी भी दाने पर नहीं टूटता। ठीक कहा न मैंने? अगर मालिक मुझे दाना नहीं देगा, तो मैं भूखा मर जाऊंगा। ठीक है न? और फिर उसे दूसरा ऐसा टर्की मुर्ग़ा कहां मिलेगा?"

"दूसरा ऐसा मुर्ग़ा ग्रौर कहीं है ही नहीं।"

"यही तो। ग्रौर दलिये-वलिये में क्या रखा है। हां, बात दलिये की नहीं, मल्योना की है। ठीक कहा न मैंने? मल्योना होगी, तो दलिया भी मिलेगा। दुनिया में सब कुछ – जई, मकई, दलिया, रोटी – सब ग्रकेली मल्योना के हाथ में है।"

टर्की मुर्ग़ा ख़ूब बातें बना रहा था, पर ग्राख़िर उसे भी भूख सताने लगी। ग्रौर फिर जब सब पक्षियों ने भरपेट दाना चुग लिया ग्रौर मल्योना उसे बुलाने नहीं ग्रायी, तो वह बहुत ही उदास हो गया। कहीं मल्योना उसे भूल तो नहीं गयी? यह तो बहुत ही बुरी बात होगी।

लेकिन तभी कुछ ऐसी बात हुई कि टर्की मुर्ग़ा ग्रपनी सारी भूख-वूख भूल गया। बात शुरू ऐसे हुई कि कोठरी के पास घूम रही एक नौजवान मुर्ग़ी सहसा चिल्ला उठी:

"कुड़-कुड़! हाय, कुड़-कुड़!"

बाक़ी मुर्ग़ियों ने फ़ौरन उसकी ग्रावाज़ में ग्रावाज़ मिलायी ग्रौर एक साथ चिल्ला उठीं: "हाय, कुड़-कुड़! कुड़-कुड़-कुड़!" सबसे ज़ोर से चिल्लाया मुर्ग़ा:

"पक-क-क-ड़ो! कौन है?"

शोर सुनकर वहां भाग ग्राये पक्षियों ने एक बड़ी ग्रजीब-सी चीज़ देखी। कोठरी के पास ही एक गड्ढे में गोल-गोल, भूरी-सी, तेज़ कांटों से ढकी कोई चीज़ पड़ी हुई थी।

"ग्ररे, यह तो मामूली पत्थर है," किसी ने कहा।

"यह हिलता है," मुर्ग़ी ने बताया। "मैंने भी पहले यही सोचा था कि पत्थर है, पर पास ग्राई तो यह हिल रहा था। हां, हां! मुझे लगा कि इसके ग्रांखें हैं, ग्रौर पत्थर की तो ग्रांखें होती नहीं।"

"कौन जाने, बुद्धू मुर्ग़ी को डर के मारे क्या दिखाई दिया," टर्की मुर्ग़े ने कहा। "हो सकता है यह... यह..."

"ग्ररे, यह तो खुंभी है," कलहंस चिल्लाया। "मैंने बिल्कुल ऐसी खुंभियां देखी हैं, बस उन पर कांटे नहीं थे।"

सब ठहाका मारकर कलहंस पर हंसने लगे।

"यह तो टोपी जैसा लगता है," किसी ने ग्रनुमान लगाना चाहा ग्रौर उसका भी मज़ाक़ उड़ा।

"ग्रजी, कहीं टोपी के भी ग्रांखें होती हैं?"

"खड़े-खड़े बातें बनाने से कुछ नहीं होने वाला, जी। कुछ करना चाहिए," मुर्ग़े ने फ़ैसला सुना दिया। "ऐ तू, कांटोंवाली चीज़, बोल, कौन जानवर है तू? मुझे ऐसे मज़ाक़-वज़ाक़ पसंद नहीं। सुना तूने?"

कोई उत्तर नहीं मिला। मुर्ग़े ने इसे अपना अपमान समझा और इस अनजाने जीव की ओर लपका, जिसने उसका अपमान किया था। उसने दो-एक बार उसे चोंच मारने की कोशिश की और फिर सकपकाकर एक ओर को हट गया।

"यह... यह बहुत ही बड़ा गोखरू है, बस और कुछ नहीं," उसने बताया। "कोई ज़ायकेदार चीज़ नहीं। चखेगा कोई?"

जिसके मन में जो आता था, वही बोलता जा रहा था। अनुमानों-अटकलों का कोई अंत न था। बस अकेला टर्की मुर्ग़ा चुप था। बकने दो औरों को, वह तो बस, उनकी मूर्खताभरी बातें सुनता रहेगा। पक्षी देर तक गला फाड़-फाड़कर चीख़ते-चिल्लाते रहे, बहस करते रहे। आख़िर कोई बोला:

"अजी, हम बेकार मग़ज़पच्ची क्यों कर रहे हैं? यहां टर्की मुर्ग़ा जो खड़ा है, वह सब कुछ जानता है।"

"बेशक जानता हूं," टर्की मुर्ग़े ने जवाब दिया। उसने अपनी पूंछ फैला ली थी और नाक पर लटकती लाल कलगी फुला ली थी।

"अगर जानते हो तो फिर हमें भी बता दो।"

"और अगर मैं नहीं बताना चाहता, तो? बस, नहीं बताना चाहता।"

सब पक्षी टर्की मुर्ग़े को मनाने लगे।

"भई, तुम तो सबसे ज़्यादा अक़्लमंद पक्षी हो! बता दो, ना। तुम्हारा क्या जाता है?"

टर्की मुर्ग़ा बड़ी देर तक नख़रे करता रहा और फिर बोला:

"अच्छी बात है, मैं बता दूंगा। हां, बता दूंगा। पर पहले यह बताओ कि तुम मुझे क्या समझते हो?"

"कौन नहीं जानता कि तुम सबसे ज़्यादा अक़्लमंद पक्षी हो!" सबने एक साथ जवाब दिया। "यह तो कहावत ही है: टर्की मुर्ग़े-सा अक़्लमंद।"

"मतलब यह कि तुम सब मेरी इज़्ज़त करते हो?"

"हां, हां, इज़्ज़त करते हैं!"

टर्की मुर्ग़ा और थोड़ी देर नख़रे करता रहा, फिर फूलकर कुप्पा हो गया। उसने कलगी फुला ली, उस अजूबे के तीन चक्कर काटे और बोला:

"यह... अजी... यह... जानना चाहते हो यह क्या है?"

"हां, हां, जानना चाहते हैं! अब ज़्यादा तंग मत कर, बता दो जल्दी से।"

"यह—कोई कहीं रेंग रहा है।"

सब ठहाका मारने ही वाले थे कि किसी के हंसने की पतली-सी आवाज़ आयी:

"क्या कहने हैं सबसे ज़्यादा अक़्लमंद पक्षी के! हा-हा!"

कांटों के नीचे से दो काली आंखोंवाली छोटी-सी थूथनी निकली, उसने हवा सूंघी और बोली:

"नमस्ते, जी। क्यों, साही को भी नहीं पहचान पाये? वाह, कैसा अजीब है यह तुम्हारा टर्की मुर्ग़ा! माफ़ कीजिए, कैसा... क्या कहूं? कैसा बुद्धू है यह!"

(३)

साही ने टर्की मुर्ग़े का इतना अधिक अपमान कर दिया था कि सब पक्षी उसकी बात सुनते ही सन्न रह गये। बेशक, टर्की मुर्ग़े ने बेवक़ूफ़ी की बात कही थी, यह ठीक है, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि साही उसका अपमान कर सकती है। आख़िर यह तो शिष्टता ही नहीं कि पराये घर में आकर, घर के मालिक का अपमान किया जाये। आप चाहे जो भी कहें, पर टर्की मुर्ग़ा बड़ा रोबदार पक्षी है और किसी साही-वाही का भला उससे क्या मुक़ाबला

सब एकबारगी ही टर्की मुर्ग़े की तरफ़ हो गये और ख़ूब होहल्ला मचने लगा।

"शायद यह साही हम सब को भी बुद्धू समझती है!" मुर्ग़ा अपने पंख फड़फड़ाता हुआ चिल्लाने लगा।

"इसने हम सबका अपमान किया है!"

"अगर कोई मूर्ख है तो यह साही ही," कलहंस ने अपनी गर्दन लंबी करते हुए कहा। "मैं यह तुरंत ही भांप गया था। हां!"

"कहीं खुंभियां भी मूर्ख होती हैं?" साही ने जवाब दिया।

"अजी किसलिये हम बेकार इससे बहस कर रहे हैं!" मुर्ग़ा चिल्ला रहा था। "इसके पल्ले तो कुछ पड़नेवाला नहीं। मेरे ख़्याल में तो हम बेकार अपना वक़्त बरबाद कर रहे हैं। बस, अगर हंस अपनी मजबूत चोंच से एक ओर से इसके कांटों का झाड़ पकड़ ले और दूसरी तरफ़ से मैं और टर्की भाई, तब फ़ौरन पता चल जायेगा कौन ज्यादा अक़्लमंद है। अक़्ल कोई इस बेहूदा झाड़ के नीचे तो छिपी नहीं रहेगी।"

"अच्छी बात है, मैं तैयार हूं," कलहंस बोला। "और भी अच्छा हो अगर मैं इसके झाड़ में चोंच गड़ा दूं और तुम मुर्ग़ा भाई इसकी थूथनी की अपनी चोंच से ख़बर लो। क्यों जी, क्या ख़्याल है? अभी पता चल जायेगा, कौन ज्यादा अक़्लमंद है।"

टर्की मुर्ग़ा अभी तक कुछ नहीं बोला था। पहले तो वह साही की धृष्टता पर सटपटा गया था, सोच ही नहीं सका था, क्या जवाब दे। फिर टर्की मुर्ग़े को ग़ुस्सा आया, इतना ज्यादा ग़ुस्सा आया कि वह ख़ुद ही थोड़ा सहम गया। वह इस बदतमीज़ साही पर टूटकर उसकी बोटी-बोटी नोच डालना चाहता था, ताकि सब देख लें कि वह कितना गंभीर और सख़्त पक्षी है। उसने साही की ओर एक-दो क़दम बढ़ाये ही थे कि सब चीख़ने-चिल्लाने और साही को गालियां देने लगे। टर्की मुर्ग़ा रुक गया और बड़े सब्र से देखने लगा कि इस सब का अंत क्या होता है।

जब मुर्ग़े ने साही के कांटे पकड़कर अलग-अलग दिशा में खींचने का प्रस्ताव रखा, तो टर्की मुर्ग़े ने उसका जोश ठंडा कर दिया:

"ठहरो, भई, ठहरो। हो सकता है, हम झगड़े के बिना ही मामला निपटा लें। मेरे ख़्याल में यहां एक छोटी-सी ग़लतफ़हमी हो गयी है। लाइये आप सारा मामला मुझ पर छोड़ दीजिये।"

"अच्छी बात है, हम थोड़ी देर रुक जाते हैं," मुर्ग़े ने मन मारकर सहमति प्रकट की। वह साही से भिड़ने को उतावला था। "वैसे इससे कुछ होना-हवाना तो है नहीं।"

"ख़ैर, यह आप मुझ पर छोड़ दीजिये," टर्की मुर्ग़े ने शांत भाव से उत्तर दिया। "आप सब सुनिये, मैं कैसे बात करता हूं।"

सब पक्षी साही के चारों ओर झुंड बनाकर खड़े हो गये और इंतज़ार करने लगे। टर्की मुर्ग़े ने उसके गिर्द चक्कर काटा, फिर खांसकर गला साफ़ किया और बोला:

"सुनिये, साही जी, मामला गंभीर है, मुझे अपने घर में ये झगड़े-वगड़े पसंद नहीं।"

"हे भगवान, कितना अक़्लमंद है! कितना अक़्लमंद!" टर्की मुर्ग़ी मुंह बाये पति की बात सुनती हुई सोच रही थी।

"सबसे पहले ज़रा इस बात की ओर ध्यान दीजिये कि आप यहां सभ्य और भले पक्षियों के बीच हैं," टर्की मुर्ग़ा कहे जा रहा था। "यह बात भी कुछ माने रखती है। कई ऐसे जीव हैं, जो हमारे अहाते में आ पाना अपना सम्मान समझते हैं, लेकिन यह सम्मान विरले ही किसी को मिलता है।"

"सच बात है! सच बात है!" कई पक्षी बोल उठे।

"ख़ैर, यह तो मैंने योंही बात के लिए बात की है, लेकिन असली बात यह नहीं।"

टर्की मुर्ग़ा रुक गया, रोब जमाने के लिए थोड़ा चुप रहा और फिर बोलने लगा:

"हां, तो अब सुनिये असली बात... क्या आपने सचमुच यह समझा था कि हम साहियों के बारे में कुछ नहीं जानते? मुझे इस बात में ज़रा भी शक नहीं कि जब कलहंस ने तुम्हें खुंभी कहा तो वह मज़ाक़ कर रहा था, और मुर्ग़ा भी और दूसरे पक्षी भी। क्यों जी, ठीक है न?"

"सोलह आने ठीक है!" सब के सब पक्षी एक साथ इतने ज़ोर से चिल्लाये कि साही ने अपनी काली थूथनी छिपा ली।

"वाह, क्या अक़्ल है!" टर्की मुर्ग़ी सोच रही थी। वह अब भांपने लगी थी कि बात किधर मुड़ रही है।

"देखा आपने, साही जी, हम सब को मज़ाक़ करना पसंद है," टर्की मुर्ग़ा कहता जा रहा था। "अपने बारे में तो मैं ख़ैर कुछ कहना ही नहीं चाहता। मज़ाक़ करने में भला हर्ज ही क्या है? और मुझे लगता है, साही जी, कि आपका स्वभाव भी मज़ाक़िया है।"

"जी हां, आपने ठीक समझा," साही ने फिर से अपनी थूथनी बाहर निकालते हुए कहा। "मेरा स्वभाव तो इतना मज़ाक़िया है कि मैं रात को सो भी नहीं सकती। कइयों को यह अच्छा नहीं लगता, पर मुझे सोते हुए ऊब महसूस होती है।"

"देखा न, तुम्हारा स्वभाव शायद हमारे मुर्ग़े से ख़ूब पटेगा, जो रात को पागलों की तरह गला फाड़-फाड़कर बांगें देता रहता है।"

एकाएक सब पर मस्ती छा गयी, मानो उन्हें पूरी ख़ुशी के लिए बस साही की कमी थी। टर्की मुर्ग़े के मन में लड्डू फूट रहे थे कि साही के उसे बुद्धू कहने और सबके सामने उसका

मज़ाक़ उड़ाने पर जो नाजुक स्थिति बन गई थी, उस पर उसने बड़ी चालाकी से क़ाबू पा लिया था।

"हां, साही जी, सच-सच बताना, तुमने जब थोड़ी देर पहले मुझे... वह... मंद बुद्धि पक्षी कहा था तो तुम मज़ाक़ कर रही थीं, न?" टर्की मुर्ग़े ने ग्रांख मारते हुए कहा।

"ग्रौर नहीं तो क्या, मज़ाक़ ही किया था," साही उसे विश्वास दिलाने लगी। "मेरा तो स्वभाव ही ऐसा है!"

"हां, हां, मुझे विश्वास है कि यही बात है। सुना जी, ग्राप सब ने?" टर्की मुर्ग़ा सबसे पूछ रहा था।

"सुन लिया, सुन लिया। हमें तो कोई शक ही नहीं था।"

टर्की मुर्ग़ा साही के कान पर झुक गया ग्रौर फ़ुसफ़ुसा कर बोला:

"ग्रच्छा तो तुम्हें एक राज़ की बात बता ही देता हूं। बस एक शर्त है: किसी को कानों कान ख़बर न हो। मैं ग्रपने मुंह मियां-मिट्ठू तो नहीं बनना चाहता, पर किया क्या जाये, ग्राख़िर तो मैं सबसे ज़्यादा ग्रक़्लमंद पक्षी हूं! कभी-कभी तो मुझे इससे थोड़ा संकोच भी होता है, पर सोना तो राख में भी चमकता है। ग्रच्छा तो किसी से कुछ कहना नहीं!"

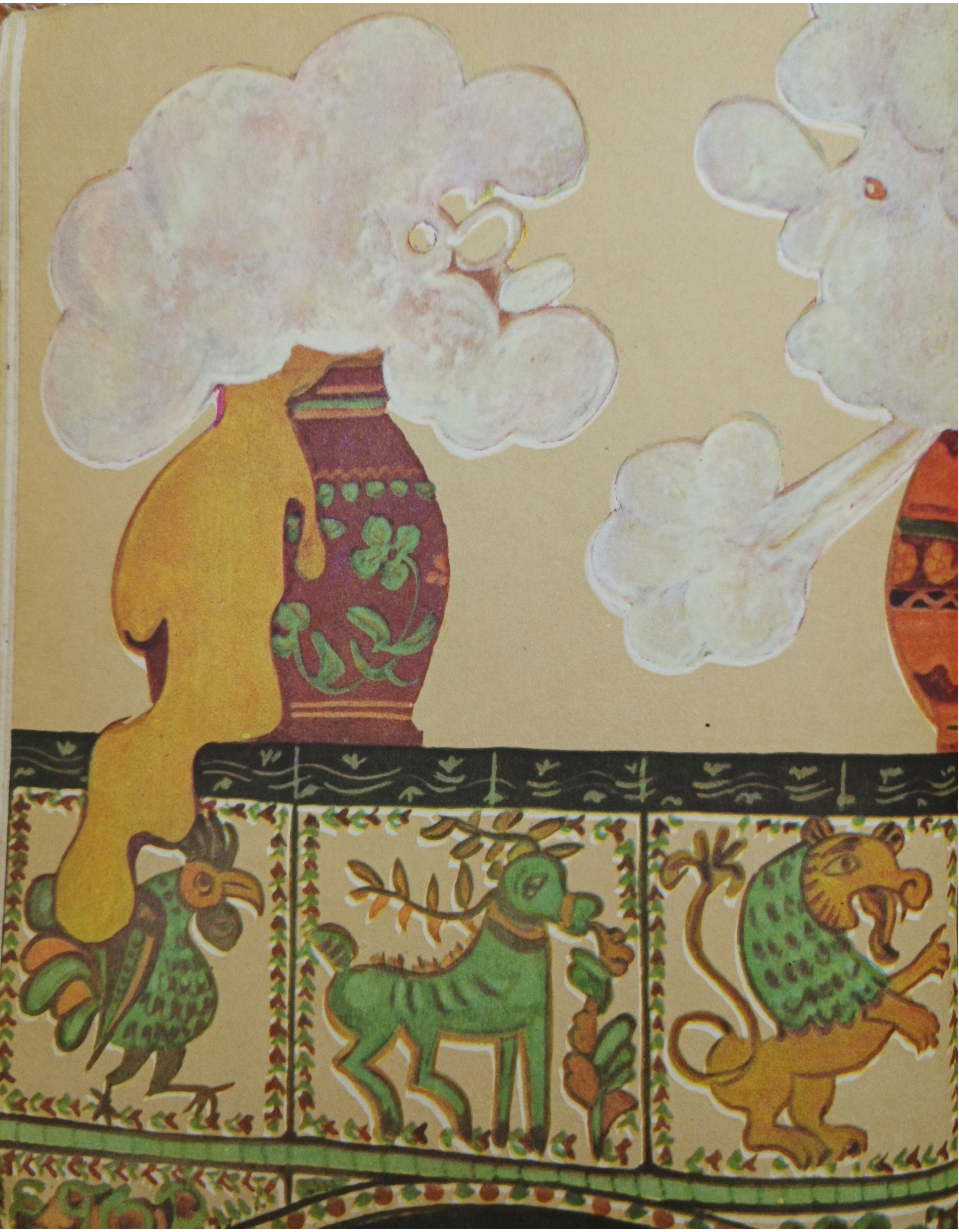

दूध, जई के दलिये और मूरका बिल्ली की कहानी

मैं बिल्ली, मैं बिल्ली,
मैं बिल्ली...

(१)

मानिये या न मानिये, पर बात यह अचंभे की ही थी। और सबसे अजीब बात तो यह थी कि ऐसा हर रोज़ होता था। बस, जैसे ही कड़ाही में दूध और मिट्टी की हांडी में जई का दलिया आग पर चढ़ाया जाता, वैसे ही यह बात शुरू होती। पहले तो वे दोनों चुप रहते, लेकिन फिर बोलने लगते :

"मैं दूध हूं।"

"और मैं जई का दलिया।"

शुरू में बातचीत धीरे-धीरे होती और फिर दूध और दलिये को जोश आने लगता।

"मैं दूध!"

"मैं जई का दलिया!"

दलिये को ऊपर से मिट्टी के ढक्कन से ढक दिया जाता और वह अपनी हांडी में बुड्ढों की तरह बड़बड़ाता। और जब वह ग़ुस्से में आता, तो एक बुलबुला ऊपर उठता, फटता और कहता :

"फिर भी मैं तो दलिया ही हूं! बड़म!"

दूध को यह शेख़ीबाज़ी बड़ी बुरी लगती थी। देखो तो, आया बड़ा अजूबा—जई का दलिया! दूध ग़ुस्से से तिलमिलाने लगता, उसमें उफान आता और वह कड़ाही में से बाहर निकलने को होता। अगर बावरचिन की ज़रा नज़र चूक जाती तो बस दूध निकल जाता।

"ओफ़, कैसा दूध है यह!" बावरचिन हर बार शिकायत करती। "ज़रा ध्यान न रखो, बस फ़ौरन निकल भागता है!"

"मैं क्या करूं, मेरा स्वभाव ही ऐसा है, फ़ौरन ग़ुस्सा आ जाता है!" दूध अपनी सफ़ाई देता। "जब मैं ग़ुस्से में आता हूं, तो मुझे ख़ुद भी अच्छा नहीं लगता। और इधर यह दलिया बराबर डींग मारता रहता है: 'मैं दलिया, मैं दलिया, मैं दलिया!' अपनी हांडी में बैठा बड़बड़ाता रहता है, बस, मेरा पारा चढ़ ही जाता है।"

कभी-कभी तो बात यहां तक पहुंचती कि दलिया ढकने से ढका होने पर भी हांडी में से निकल जाता। अंगीठी पर फैल जाता और अपना गाना गाता जाता :

"मैं दलिया! दलिया! दलिया! श-श-श!"

हां, यह सच है कि ऐसा कम ही होता था, पर होता तो था ही, और बावरचिन बेचारी हताश होकर जाने कितनी बार दोहराती:

"ओफ़ कैसा दलिया है! क्यों यह हांडी में टिककर बैठा नहीं रहता, हैरान हूं मैं तो।"

(२)

बावरचिन को वैसे अकसर परेशान होना पड़ता था। और इसके कारण भी कई थे। मूरका बिल्ली को ही लीजिये। बिल्ली थी बहुत सुंदर और बावरचिन उसे बहुत प्यार करती थी। रोज़ सुबह ही मूरका बावरचिन के पीछे-पीछे घूमती फिरती और ऐसी दर्दीली आवाज़ में म्याऊं-म्याऊं करती कि पत्थर का कलेजा भी पसीज जाये।

"ओफ़, कैसी भूखी है तू!" बावरचिन हैरानी से कहती और बिल्ली को भगाती। "कल तूने कितनी सारी तो कलेजी ही खायी थी?"

"पर वह तो कल की बात है!" मूरका भी हैरान होकर कहती। "आज मुझे फिर भूख लगी है। म्याऊं-ऊं!"

"चूहे पकड़कर खा न, आलसी कहीं की।"

"हां, कहना आसान है, ख़ुद पकड़कर देखो न एक भी चूहा," बिल्ली अपनी सफ़ाई देती। "वैसे मैं तो बहुतेरी कोशिश करती हूं। अभी पिछले हफ़्ते ही किसने चूहा पकड़ा था? और मेरी नाक पर यह खरोंच कहां से आयी? इतना बड़ा चूहा पकड़ने लगी थी, पर उसने ख़ुद ही मेरी नाक दबोच ली। कहना आसान है, चूहे पकड़ो!"

जी भरके कलेजी खा चुकने के बाद मूरका अलावघर के पास कहीं गरम जगह पर बैठ जाती और आंखें मूंदकर ऊंघने लगती।

"देखा, कितना खा लिया!" बावरचिन कहती। "आंखें मुंदी जा रही हैं, निखट्टू कहीं की! और इसे गोश्त दिये जाओ, बस!"

"मैं कोई संन्यासी तो हूं नहीं, जो गोश्त न खाऊं," मूरका बस एक आंख खोलकर ही सफ़ाई देती। "फिर मुझे मछली भी अच्छी लगती है। बड़ा मज़ा आता है मछली खाने में। मुझे अभी तक यह ही नहीं पता चला कि कलेजी ज़्यादा अच्छी है या मछली। किसी को

बुरा न लगे, इसलिए मैं दोनों ही खा लेती हूं। अगर मैं आदमी होती, तो जरूर मछेरा या वह फेरीवाला बनती, जो हमारे यहां रोज कलेजी लाता है। मैं सारी दुनिया की बिल्लियों को जी भरकर खिलाती और ख़ुद भी हमेशा भरपेट खाती।"

खा-पीकर मूरका अपना मन बहलाने के लिए इधर-उधर की चीज़ों में लग जाती। क्यों न भला वह एक-दो घंटे खिड़की पर बैठ ले, जहां मैना का पिंजड़ा टंगा हुआ है? बुद्दू चिड़िया को कूदते-फांदते देखना भी अच्छा मनबहलाव है।

"मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूं, बूढ़ी चोट्टी!" मैना ऊपर से चिल्लाती। "कोई जरूरत नहीं मेरी ओर देखने की।"

"पर मैं तुझसे दोस्ती करना चाहती हूं!"

"ख़ूब समझती हूं मैं तेरी दोस्ती का मतलब। कुछ दिन हुए कौन सचमुच की जिंदा गौरैया को खा गया था? थू, गंदी कहीं की!"

"ज़रा भी गंदी नहीं मैं, उलटे मुझे सब प्यार करते हैं। आ जा मेरे पास, मैं तुझे कहानी सुनाऊंगी।"

"ओह, चोट्टी! देखो तो इसे, कहानी सुनायेगी! देखा था मैंने, कैसे तूने भुने हुए चूज़े को रसोई से चुराकर उसे कहानी सुनाई थी। बहुत ख़ूब!"

"तेरी मर्ज़ी! मैं तो तेरी ही ख़ुशी के लिए कह रही थी। हां, भुने हुए चूज़े को मैं सचमुच खा गयी थी, पर वह तो वैसे भी किसी काम का नहीं रहा था।"

(३)

हर रोज़ सुबह मूरका अंगीठी के पास बैठकर बड़े धीरज से दूध और दलिये को झगड़ते सुनती रहती। वह समझ ही नहीं पाती थी कि मामला क्या है और बस आंखें झपकाती रहती।

"मैं दूध!"

"मैं दलिया! दलिया-दलिया-दलिया!"

"नहीं, मैं कुछ नहीं समझती! बिल्कुल कुछ नहीं समझती," मूरका कहती। "किस बात पर ताव खाते हैं ये? मान लो अगर मैं बार-बार कहने लगूं: मैं बिल्ली, मैं बिल्ली,

बिल्ली, बिल्ली। किसी को यह बुरा लगेगा क्या? नहीं, मैं नहीं समझती। वैसे यह तो मानना ही होगा कि मुझे दूध ज़्यादा अच्छा लगता है, ख़ास तौर पर जब वह ग़ुस्से से तमतमाया हुआ नहीं होता।"

एक दिन दूध और दलिया बहुत ही ज़ोरों से झगड़े। इतने ज़ोरों से कि दोनों के बर्तन आधे खाली हो गये और रसोई में धुआं भर गया। बावरचिन भागी आयी और बस हाथ झटककर रह गयी।

"क्या करूंगी अब मैं?" अंगीठी से दूध और दलिया उतारते हुए वह कहने लगी। "पल भर को भी पीठ नहीं मोड़ सकती।"

दूध और दलिया एक ओर रखकर बावरचिन खाने-पीने का सामान लेने बाज़ार चली गई। मूरका ने फ़ौरन मौक़े का फ़ायदा उठाया। वह दूध के पास बैठ गयी और फूंक मारते हुए बोली:

"दूध जी, आप नाराज़ मत होइये।"

दूध शांत होने लगा था। मूरका ने उसके गिर्द एक चक्कर काटा, एक बार फिर फूंक मारी, अपनी मूछें ठीक कीं और बड़े प्यार से बोली:

"अच्छा, सुनिये। ग़ुस्सा अच्छी चीज़ नहीं। जी हां! आप मुझे अपना पंच चुन लीजिये, मैं अभी आप दोनों के झगड़े का फ़ैसला किये देती हूं।"

झिरी में बैठे काले तिलचटे को हंसते-हंसते उच्छू आ गयी: "क्या कहने हैं इस पंच के। हा-हा! ओफ़, बूढ़ी चोट्टी, कैसी-कैसी चालें आती हैं तुझे!" लेकिन दूध और दलिया ख़ुश थे कि आख़िर उनके झगड़े का फ़ैसला हो जायेगा। ख़ुद तो वे बता भी नहीं सकते थे कि बात क्या है. किस बात पर वे झगड़ते रहते हैं।

"ठीक है, ठीक है, अभी सब फ़ैसला किये देती हूं," मूरका बिल्ली कह रही थी। "मैं ज़रा भी अन्याय नहीं होने दूंगी। चलिये, दूध से शुरू करते हैं।"

बिल्ली ने दूध की कड़ाही के गिर्द कई चक्कर काटे, पंजे से उसे छूकर देखा, ऊपर से दूध पर फूंक मारी और फिर पीने लगी।

"अरे, बाप रे! पकड़ो!" तिलचटा चिल्लाया। "यह सारा दूध पी जायेगी और नाम लगेगा मेरा!"

बावरचिन ने बाज़ार से लौटकर दूध लेना चाहा तो देखा कड़ाही खाली है। मूरका बिल्ली अंगीठी के पास ही मीठी नींद में सो रही थी, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

"ओह, हरामख़ोर! किसने पिया है दूध, बोल?" बावरचिन बिल्ली का कान ऐंठते हुए उसे गालियां देने लगी।

मूरका को दर्द तो बहुत हुआ, लेकिन वह ऐसे बनी रही, जैसे कुछ समझ ही न रही हो और उसे बोलना न आता हो। जब उसे दरवाज़े के बाहर फेंक दिया गया, तब उसने अपना बदन झकझोड़ा, अपने दबे हुए रोयें चाटे, दुम सीधी की और बोली:

"अगर मैं बावरचिन होती, तो सभी बिल्लियां सुबह से शाम तक बस दूध ही पीती रहतीं। ख़ैर, मैं अपनी बावरचिन से नाराज़ नहीं, क्योंकि वह यह बात नहीं समझती।"

सो जा,
बिटिया रानी,
सो जा...

सो, अल्योनुश्का, सो!
ख़ूब बड़ी हो!

(१)

अल्योनुश्का की एक आंख सो रही है, अल्योनुश्का का दूसरा कान सो रहा है...

"पापा, आप यहीं हैं?"

"यहीं हूं, बिटिया।"

"पापा, मैं रानी बनना चाहती हूं।"

अल्योनुश्का सो गयी है। वह नींद में मुस्करा रही है।

ओह, कितने फूल हैं! और वे भी सब मुस्करा रहे हैं। उन्होंने अल्योनुश्का का खटोला घेर लिया है और फुसफुस करते हुए पतली-पतली आवाज़ों में हंस रहे हैं। यहां लाल, पीले, नीले, गुलाबी, आसमानी और सफ़ेद फूल हैं, मानो इंद्रधनुष धरती पर गिरकर छिटक गया हो, रंग-बिरंगी चिनगारियों के रूप में बिखर गया हो, बच्चों की हंसती आंखों में छा गया हो।

"अल्योनुश्का रानी बनना चाहती है!" खेतों में उगनेवाले नीले-नीले घंटीफूल अपनी पतली-पतली हरी टांगों पर झूमते हुए टुनटुन कर रहे थे।

"अरे, कैसी अजीब है यह!" शर्मीले फ़ार्गेट-मी-नॉट फूल बुदबुदा रहे थे।

"भाइयो, यह तो गंभीरता से सोचने-समझने की बात है," पीले कुकरौंधे ने सब की बात काटते हुए कहा। "कम से कम मुझे इसकी उम्मीद नहीं थी।"

"रानी बनने का मतलब क्या है?" खेतों-मैदानों में उगनेवाला नीलकूपी फूल पूछ रहा था। "मैं तो खेत में बड़ा हुआ हूं, मुझे तुम्हारी यह शहरी बातें नहीं मालूम।"

"सीधी-सी बात है," गुलाबी कार्नेशन बीच में बोल उठा। "यह तो इतनी सीधी-सादी बात है कि समझाने की भी ज़रूरत नहीं। रानी उसे कहते हैं... रानी... तुम नहीं समझते क्या? ओफ़, कैसे अजीब फूल हो तुम! जब फूल गुलाबी होता है, जैसे मैं हूं, तो वह राजा होता है। दूसरे शब्दों में: अल्योनुश्का कार्नेशन फूल बनना चाहती है। समझ गये, न?"

सब खिलखिलाकर हंस दिये। बस गुलाब के फूल चुप थे। उन्हें लग रहा था कि उनकी बेइज़्ज़ती की गयी है। भला कौन यह नहीं जानता कि फूलों का राजा गुलाब है—कोमल, प्यारी, मीठी-मीठी सुगंधवाला गुलाब? और यहां यह कार्नेशन अपने को फूलों का राजा बता रहा है। नहीं, यह तो कोई ढंग की बात नहीं। आख़िर एक गुलाब को ग़ुस्सा आ गया, वह ग़ुस्से से लाल सुर्ख़ हो गया और बोला:

"नहीं जी, माफ़ कीजिए, अल्योनुश्का गुलाब बनना चाहती है! हां! गुलाब को सब प्यार करते हैं, इसीलिए तो वह राजा कहलाता है।"

"वाह जी, क्या कहने हैं!" पीला कुकरौंधा नाराज़ हो गया। "अगर यही बात है तो फिर आप मुझे क्या समझते हैं?"

"कुकरौंधे भैया, नाराज़ मत हो," जंगल के घंटीफूल उसे मनाने लगे। "इससे स्वभाव बिगड़ता है और फिर यह अच्छा भी नहीं लगता। देखो न, हम कह ही नहीं रहे कि अल्योनुश्का जंगल का घंटीफूल बनना चाहती है, यह तो बिना कहे ही स्पष्ट है।"

(२)

वहां कई तरह के फूल थे, उन्हें बहस करते देख हंसी आती थी। खेतों-मैदानों के फूल सीधे-सादे, विनम्र-से थे, जैसे बनफ़शा, फ़ार्गेट-मी-नॉट, नीले घंटीफूल, नीलकूपी, मैदानी लिली और कार्नेशन; और क्यारियों में उगाये गये फूल–गुलाब, ट्यूलिप, नरगिस, लिली–थोड़ी-थोड़ी शान दिखा रहे थे। वे सजे-धजे अमीर बच्चों जैसे थे। अल्योनुश्का को मैदानों में उगनेवाले विनम्र फूल ज्यादा अच्छे लगते थे। वह उनसे गुलदस्ते बनाती थी और उनकी माला गूंथ कर सिर पर मुकुट की तरह पहनती थी। कितने अच्छे हैं वे सब!

"अल्योनुश्का हमें बहुत प्यार करती है," बनफ़शा फूल कह रहे थे। "हम वसंत में सबसे पहले उगते हैं, बर्फ़ पिघली नहीं कि हम उगने लगते हैं।"

"हम भी," मैदानी लिलियां कह रही थीं। "हम भी वसंत में उगती हैं। हमें तो नख़रा-वख़रा आता नहीं, जंगल में ही उग जाती हैं।"

"हमारा इसमें क्या क़सूर है कि हमें जंगल में उगने में ठंड लगती है," मीठी-मीठी सुगंध और लहरदार पत्तियों वाले गिली फूल शिकायत कर रहे थे। हम तो यहां बस मेहमान हैं, हमारा देश तो बहुत दूर है, जहां इतनी गर्मी होती है और जाड़ा बिल्कुल होता ही नहीं। कितना अच्छा है वहां, हमें हमेशा अपनी प्यारी मातृभूमि की याद सताती रहती है। यहां उत्तर में तो इतनी ठंड है। अल्योनुश्का हमें भी प्यार करती है, बहुत प्यार करती है।"

"हमारे यहां भी अच्छा है," खेतों-मैदानों के फूल कह रहे थे। "हां, बेशक कभी-कभी बहुत ठंड होती है, लेकिन यह तो सेहत के लिए अच्छा है। और फिर ठंड हमारे दुष्ट दुश्मनों – तरह-तरह के कीड़े-मकोड़ों को मार देती है। अगर ठंड न हो, तो हमें बड़ी मुसीबत सहनी पड़े।"

"हमें भी ठंड अच्छी लगती है," गुलाबों ने अपनी ओर से जोड़ा।

अज़ेलिया और कमेलिया ने भी यही कहा। उन सबको ठंड अच्छी लगती है, जब उन पर रंग चढ़ता है।

"सुनो भई, चलो अब अपने-अपने देश के बारे में बताते हैं," सफ़ेद नरगिस ने सुझाव रखा। "यह बड़ी दिलचस्प बात होगी। अल्योनुश्का हमारी कहानियां सुनेगी। वह हमें भी प्यार करती है।"

और तब सब फूल एक साथ बोलने लगे। गुलाब आंखों में आंसू लिये शिराज़ की घाटियों को याद कर रहे थे। सम्बुल फूल फ़िलीस्तीन को, अज़ेलिया – अमरीका को, लिलियां – मिस्र को। यहां दुनिया के कोने-कोने से आये हुए फूल थे। हर कोई अपने देश के बारे में बहुत कुछ बता सकता था। सबसे ज़्यादा फूल दक्षिण से थे, जहां इतनी धूप होती है और जाड़ा नहीं होता। कितना अच्छा है वहां! सदा गर्मियां रहती हैं! कितने बड़े-बड़े पेड़ उगते हैं वहां, कैसी-कैसी चिड़ियां हैं, कितनी सारी तितलियां हैं – उड़ते फूलों-सी और कितने ही फूल हैं तितलियों जैसे।

"हम तो उत्तर में बस मेहमान हैं, हमें ठंड लगती है," दक्षिण के ये सब फूल दबी-दबी आवाज़ में कह रहे थे।

उत्तर के खेत-मैदानों में उगनेवाले फूलों को तो उन पर तरस भी आ गया। सचमुच जब ठंडी उत्तरी हवा चलती है, ठंडी बारिश होती है और बर्फ़ गिरती है, तो यह सब सहने के लिए बड़ा धीरज चाहिये। माना कि वसंत में बर्फ़ जल्दी ही पिघल जाती है, पर होती तो वह बर्फ़ ही है।

"तुममें एक बड़ी भारी कमी है," नीलकूपी ने ये सब बातें सुनकर समझाया। "मैं यह मानने को तैयार हूं कि तुम कभी-कभी हम सीधे-सादे फूलों से ज़्यादा सुंदर होते हो, यह भी सही है कि तुम हमारे प्यारे मेहमान हो, पर तुम्हारी सबसे बड़ी ख़ामी यह है कि तुम सिर्फ़ अमीर लोगों के लिए उगते हो और हम सब के लिए। हम तुमसे कहीं अधिक भले हैं। मुझे ही ले लो, मुझे तुम गांव के हर बच्चे के हाथों में देख सकते हो। कितनी ख़ुशियां देती

हूं मैं ग़रीब बच्चों को! मेरे लिए पैसे नहीं देने पड़ते, बस, बाहर खेत-मैदान में जाकर चुन लो। मैं गेहूं ग्रौर जई के साथ उगती हूं।"

(३)

ग्रल्योनुश्का फूलों की सब बातें सुन रही थी ग्रौर हैरान हो रही थी। उसका बड़ा मन हुग्रा कि वह ख़ुद सब कुछ देखे, वे सब देश, जिनकी बातें ग्रभी-ग्रभी फूल सुना रहे थे।

"काश, मैं ग्रबाबील होती, तो ग्रभी उड़ जाती," ग्राख़िर उसने कहा। "क्यों मेरे पंख नहीं हैं? हाय, कितना ग्रच्छा है चिड़िया होना।"

वह ग्रभी ग्रपनी बात पूरी भी नहीं कर पायी थी कि एक बीरबहूटी उसके पास रेंग ग्रायी–सचमुच की बीरबहूटी, इतनी लाल-लाल ग्रौर काली चित्तियोंवाली, काले सिर ग्रौर पतली-पतली टांगोंवाली।

"ग्रल्योनुश्का, चल उड़ चलें!" बीरबहूटी ने ग्रपनी मूंछें हिलाते हुए फुसफुसाकर कहा।

"पर मेरे तो पंख नहीं हैं, बीरबहूटी!"

"तू मेरे ऊपर बैठ जा।"

"बैठूं कैसे? तू तो इतनी छोटी-सी है।"

"तू ध्यान से मुझे देखती जा।"

ग्रल्योनुश्का देखने लगी ग्रौर उसकी हैरानी बढ़ती ही गई। बीरबहूटी ने ग्रपने ऊपरी सख़्त पर सीधे किये ग्रौर वह दुगनी बड़ी हो गयी, फिर उसने मकड़ी के जाल जैसे झीने-झीने निचले पर फैलाये तथा ग्रौर भी ज़्यादा बड़ी हो गई। ग्रल्योनुश्का के देखते-देखते ही बीरबहूटी बढ़ती जा रही थी। ग्राख़िर वह इतनी बड़ी हो गयी कि ग्रल्योनुश्का लाल परों के बीच उसकी पीठ पर ग्राराम से बैठ सकती थी।

"ठीक से बैठ गयी न, ग्रल्योनुश्का?" बीरबहूटी ने पूछा।

"हां, बिल्कुल ठीक से।"

"ग्रब मुझे कसकर पकड़ ले।"

उड़ान के पहले क्षण में तो अल्योनुश्का ने डर के मारे आंखें ही बंद कर लीं। उसे लगा कि वह ख़ुद नहीं, बल्कि उसके नीचे शहर, जंगल, नदियां, पहाड़–सब उड़ रहे हैं। फिर उसे लगने लगा कि वह बिल्कुल ही छोटी हो गयी है–सरसों के दाने जितनी और रूई की तरह हल्की-फुल्की। बीरबहूटी बड़ी तेज़ी से उड़ती जा रही थी, इतनी तेज़ी से कि कानों में हवा सायं-सायं करती थी।

"देख, वहां नीचे क्या है," बीरबहूटी ने अल्योनुश्का से कहा।

अल्योनुश्का ने नीचे देखा और आश्चर्य से अपने नन्हे-नन्हे हाथ फैला दिये।

"हाय, कितने सारे गुलाब! लाल, पीले, सफ़ेद, गुलाबी!"

धरती पर मानो गुलाबों का कालीन बिछा हुआ था।

"चलो, ज़मीन पर उतरें," उसने बीरबहूटी से अनुरोध किया।

वे उतर गये। अल्योनुश्का फिर पहले जितनी ही बड़ी और बीरबहूटी छोटी हो गयी।

अल्योनुश्का बड़ी देर तक गुलाबों के मैदान में भागती रही। उसने ढेर सारे गुलाब तोड़कर उनका बहुत ही बड़ा गुलदस्ता बना लिया। कितने सुंदर थे ये गुलाब, उनकी ख़ुशबू से अल्योनुश्का का सिर चकराने-सा लगा था। काश, वह गुलाबों के इस मैदान को अपने देश में, उत्तर में ले जा सकती, जहां गुलाब बस प्यारे मेहमान ही हैं!

"अच्छा, अब आगे उड़ते हैं," बीरबहूटी ने अपने पर फैलाते हुए कहा।

वह फिर बहुत बड़ी हो गयी और अल्योनुश्का छोटी-सी!

(४)

वे फिर उड़ चलीं।

कितना अच्छा था चारों ओर! आसमान इतना नीला था, नीचे और भी नीला समुद्र था। वे पथरीले ढलवें तट के ऊपर उड़ रही थीं।

"क्या हम समुद्र पार करेंगी?" अल्योनुश्का ने पूछा।

"हां। बस तू टिककर बैठी रह और मुझे कसकर पकड़े रख।"

शुरू में तो अल्योनुश्का को डर लगा, पर बाद में सब ठीक हो गया। चारों ओर आसमान और पानी को छोड़कर और कुछ नहीं था। समुद्र में सफ़ेद पंखोंवाली बड़ी-बड़ी चिड़ियों जैसे जहाज़ तैर रहे थे। छोटे-छोटे जहाज़ मक्खियों-से लगते थे। वाह, कितना सुंदर, कितना अच्छा था यह सब! और आगे समुद्र का किनारा दिखने लगा था—नीचा-सा, पीला-पीला और रेतीला, किसी बहुत ही बड़ी नदी का मुहाना नज़र आ रहा था, कोई बिल्कुल सफ़ेद शहर, मानो वह चीनी का बना हो। और उसके आगे था निर्जन रेगिस्तान, जहां बस पिरामिड ही पिरामिड थे। बीरबहूटी नदी के किनारे उतर गयी। यहां हरे-हरे पटेरे उगे हुए थे और थीं कोमल, अद्भुत लिलियां।

"कितना अच्छा है तुम्हारे यहां," अल्योनुश्का उनके साथ बातें करने लगी। "यह जाड़ा तुम्हारे यहां नहीं होता क्या?"

"जाड़ा? वह क्या होता है?" लिलियां हैरान हुईं।

"जाड़ा तब होता है जब बर्फ़ पड़ती है।"

"और बर्फ़ क्या होती है?"

लिलियां हंस पड़ीं। वे सोच रही थीं कि उत्तर से आयी यह नन्ही-सी लड़की उनके साथ मज़ाक़ कर रही है। हां, वैसे तो हर साल शरद ऋतु में यहां चिड़ियों के बड़े-बड़े झुंड उड़ आते थे और वे चिड़ियां भी जाड़ों की बातें करती थीं। पर ख़ुद उन्होंने भी कभी अपनी आंखों से जाड़ा नहीं देखा था, वे औरों से सुनी-सुनायी बातें बताती थीं। अल्योनुश्का को भी विश्वास नहीं हो रहा था कि यहां जाड़ा नहीं होता। मतलब यह कि यहां ओवरकोट और नमदे के गरम जूते पहनने की भी ज़रूरत नहीं?

वे आगे उड़ चलीं। अब अल्योनुश्का नीले समुद्र, पहाड़ों और धूप से झुलसे रेगिस्तान को देखकर, जहां सम्बुल के फूल उगे हुए थे, हैरान नहीं हो रही थी।

"मुझे गर्मी लग रही है," वह शिकायत कर रही थी। "बीरबहूटी, मेरे ख़्याल में तो यह अच्छा नहीं कि हमेशा गर्मी रहे।"

"जिसको जैसी आदत हो, अल्योनुश्का।"

वे ऊंचे पहाड़ों की ओर उड़ रही थीं, जिनकी चोटियां सदा हिम से ढकी रहती हैं। यहां इतनी गर्मी नहीं थी। पहाड़ों के पार घने जंगल शुरू हो गये। पेड़ों के नीचे अंधेरा था, क्योंकि सूरज की किरणें उनकी घनी टहनियों के पार नहीं पहुंच पाती थीं। टहनियों पर बंदर उछल-कूद रहे थे। और चिड़ियां कितनी थीं—हरी, लाल, पीली, नीली चिड़ियां। लेकिन

सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक थे फूल, जो पेड़ के तनों पर ही उग रहे थे। कई फूल तो आग के अंगारों जैसे ही थे, कई रंग-बिरंगे थे, कई छोटी-छोटी चिड़ियों जैसे और कई बड़ी-बड़ी तितलियों जैसे – सारे जंगल में मानो रंग-बिरंगे तारे चमक रहे थे।

"ये ऑर्किड हैं," बीरबहूटी ने बताया।

यहां सब कुछ ऐसे एक दूसरे से गुंथा हुआ था कि चलना भी असम्भव था।

वे आगे उड़ चलीं। हरे-हरे किनारों के बीच बहुत ही बड़ी नदी बह रही थी। बीरबहूटी सीधे पानी में उग रहे सफ़ेद फूल पर ही जा बैठी। इतने बड़े फूल अल्योनुश्का ने पहले कभी नहीं देखे थे।

"यह पवित्र फूल है," बीरबहूटी ने बताया। "इसे कमल कहते हैं।"

(५)

अल्योनुश्का ने इतना कुछ देखा कि आख़िर वह थक गई। उसका घर जाने को मन हुआ: जो भी हो घर ही सबसे अच्छा है।

"मुझे बर्फ़ अच्छी लगती है," अल्योनुश्का कह रही थी। "जाड़ों के बिना मज़ा नहीं।"

वे फिर उड़ चलीं और जितनी ऊपर उड़ती जाती थीं, ठंड उतनी ही बढ़ती जाती थी। थोड़ी देर बाद नीचे खेत दिखे, जहां चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ पड़ी हुई थी। बस फ़र, चीड़ और देवदार के पेड़ों का ज़ंगल ही हरा था। अल्योनुश्का ने जब पहला फ़र का पेड़ देखा, तो बेहद ख़ुश हुई।

"फ़र, फ़र!" वह चिल्लायी।

"नमस्ते, अल्योनुश्का!" नीचे से हरा फ़र का पेड़ चिल्लाया।

यह क्रिसमस पर सजाया जानेवाला सचमुच का फ़र का पेड़ था। अल्योनुश्का फ़ौरन उसे पहचान गयी। हाय, कितना प्यारा पेड़ है! अल्योनुश्का उसे यह कहने के लिए नीचे झुकी कि वह कितना प्यारा है और सहसा नीचे गिर चली। उफ़, कितना डर लग रहा था! हवा में कई कलाबाज़ियां खाने के बाद वह सीधे नरम-नरम बर्फ़ में जा गिरी। डर के मारे अल्योनुश्का ने आंखें बंद कर लीं और वह जानती ही नहीं थी कि ज़िंदा है या मर गयी।

"तू यहां कहां से आ गयी, गुड़िया?" किसी ने उससे पूछा।

अल्योनुश्का ने आंखें खोलीं तो बर्फ़-से ही सफ़ेद बालों और झुकी कमरवाला एक बूढ़ा दिखाई दिया। वह उसे भी पहचान गयी। यह वही बूढ़ा था जो समझदार बच्चों के लिए क्रिसमस पर फ़र के पेड़ लाता है, जो सुनहरे सितारों, रंग-बिरंगे गोलों और तरह-तरह के खिलौनों से सजे होते हैं। बहुत ही भला है यह बूढ़ा! उसने फ़ौरन अल्योनुश्का को अपनी गोद में उठाकर उसे अपना ओवरकोट ओढ़ा दिया और फिर पूछा:

"तू यहां कैसे आयी, नन्ही गुड़िया?"

"मैं बीरबहूटी पर बैठकर दुनिया की सैर कर रही थी। ओह, कितना कुछ देखा मैंने, दादा!"

"अच्छा।"

"और मैं आपको भी जानती हूं, दादा! आप बच्चों के लिए फ़र के पेड़ और उपहार लाते हैं।"

"हां। अब भी मैं उपहारोंवाला पेड़ तैयार कर रहा हूं।"

उसने अल्योनुश्का को एक लंबा बांस दिखाया, जो फ़र के पेड़ जैसा तो बिल्कुल ही नहीं लगता था।

"यह भी कोई पेड़ है, दादा? यह तो बस एक बड़ा-सा डंडा है।"

"ज़रा ठहर, फिर देखना।"

बूढ़ा अल्योनुश्का को छोटे-से गांव की ओर ले चला। सारा गांव बर्फ़ से ढका हुआ था। बर्फ़ के नीचे से बस घरों की छतें और चिमनियां दिख रही थीं। गांव के बच्चे बूढ़े का इंतज़ार कर रहे थे। वे उछलते-कूदते चिल्ला रहे थे:

"उपहार! उपहार!"

वे गांव के पहले घर के पास पहुंचे। बूढ़े ने जई की पूली निकाली, उसे बांस के एक सिरे से बांध दिया और बांस को छत पर उठा दिया। फ़ौरन ही चारों ओर से छोटी-छोटी चिड़ियां उड़ आयीं, जो जाड़ों में दूर देशों को नहीं उड़ जातीं, और जई की बालियों में से दाना चुगने लगीं।

"यह हमारा उपहारोंवाला पेड़ है!" वे चीं-चीं करती हुई कह रही थीं।

अल्योनुश्का सहसा बहुत ख़ुश हो उठी। वह पहली बार देख रही थी कि कैसे जाड़ों में चिड़ियों के लिए उपहारोंवाला पेड़ बनाया जाता है।

वाह, कितना मजा आ रहा था! कितना भला था यह बूढ़ा! एक गौरैया ने, जो सबसे ज्यादा फुदक रही थी, फ़ौरन अल्योनुश्का को पहचान लिया और चहचहायी :

"अरे, यह तो अल्योनुश्का है! मैं इसे अच्छी तरह जानती हूं। इसने कई बार मुझे रोटी के टुकड़े दिये हैं।"

दूसरी गौरैयों ने भी अल्योनुश्का को पहचान लिया और वे ख़ुश होकर ख़ूब ज़ोरों से चहचहाने लगीं।

एक और गौरैया उड़ आयी। वह बहुत ही लड़ाकू थी। वह सब को इधर-उधर धकेलकर ख़ुद अच्छे-अच्छे दाने नोचने लगी। यह वही गौरैया थी, जो कवई मछली से लड़ी थी। अल्योनुश्का ने उसे पहचान लिया।

"नमस्ते, गौरैया!"

"अरे, यह तू है, अल्योनुश्का? नमस्ते!"

लड़ाकू गौरैया कुछ देर तक एक पैर पर फुदकती रही, फिर उसने शरारत भरी नज़र से देखते हुए आंख मारी और दयालु बूढ़े से कहा :

"यह अल्योनुश्का तो रानी बनना चाहती है। हां, हां, मैंने ख़ुद थोड़ी देर पहले इसे यह कहते सुना था।"

"तू रानी बनना चाहती है, गुड़िया?" बूढ़े ने पूछा।

"हां, दादा, बहुत चाहती हूं!"

"ठीक है। इससे आसान बात ही कोई नहीं : हर रानी नारी होती है और हर नारी रानी। जा, अब घर जाकर सभी छोटी बच्चियों को यह बात बता दे।"

बीरबहूटी तो इसी इंतज़ार में थी कि वे जल्दी-जल्दी यहां से चली जायें, नहीं तो कोई शैतान गौरैया उसे खा ही न ले। वे तेज़ी से घर की ओर उड़ने लगीं। और वहां सब फूल अल्योनुश्का की राह देख रहे थे। वे सारा समय यह बहस करते रहे थे कि रानी क्या होती है।

सो जा, बिटिया रानी, सो जा...

अल्योनुश्का की एक आंख सो रही है, दूसरी देख रही है, अल्योनुश्का का एक कान सो रहा है, दूसरा सुन रहा है। अब सब अल्योनुश्का के खटोले के पास इकट्ठे हो गये हैं : बहादुर

ख़रगोश भी और भालू भी, लड़ाकू मुर्ग़ा, गौरैया और काला कौआ भी, कवई मछली भी और छोटा-सा पतंगा भी। सब यहां हैं, सब अल्योनुश्का के पास हैं।

"पापा, मैं सबको प्यार करती हूं," अल्योनुश्का बुदबुदाती है। "मैं काले तिलचटों को भी प्यार करती हूं, पापा।"

अल्योनुश्का की दूसरी आंख बंद हो गयी है, दूसरा कान सो गया है। और अल्योनुश्का के खटोले के पास हरी-हरी वसंती घास लहरा रही है, फूल मुस्करा रहे हैं—बहुत सारे फूल हैं: नीले, गुलाबी, पीले, आसमानी, लाल। खटोले के ऊपर हरा-हरा भोज का पेड़ झुका हुआ है और बड़े प्यार के साथ कुछ गुनगुना रहा है। धूप चमक रही है, पीली-पीली रेत फैली हुई है और समुद्र की नीली लहर अल्योनुश्का को अपने पास बुला रही है।

"सो, अल्योनुश्का, सो! ख़ूब बड़ी हो!"

सो जा, बिटिया रानी, सो जा।